वर्ष : 44
अंक : 4

अक्टूबर – दिसंबर 2023

मूल्य 200 रुपए
ISSN 2582-4481

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

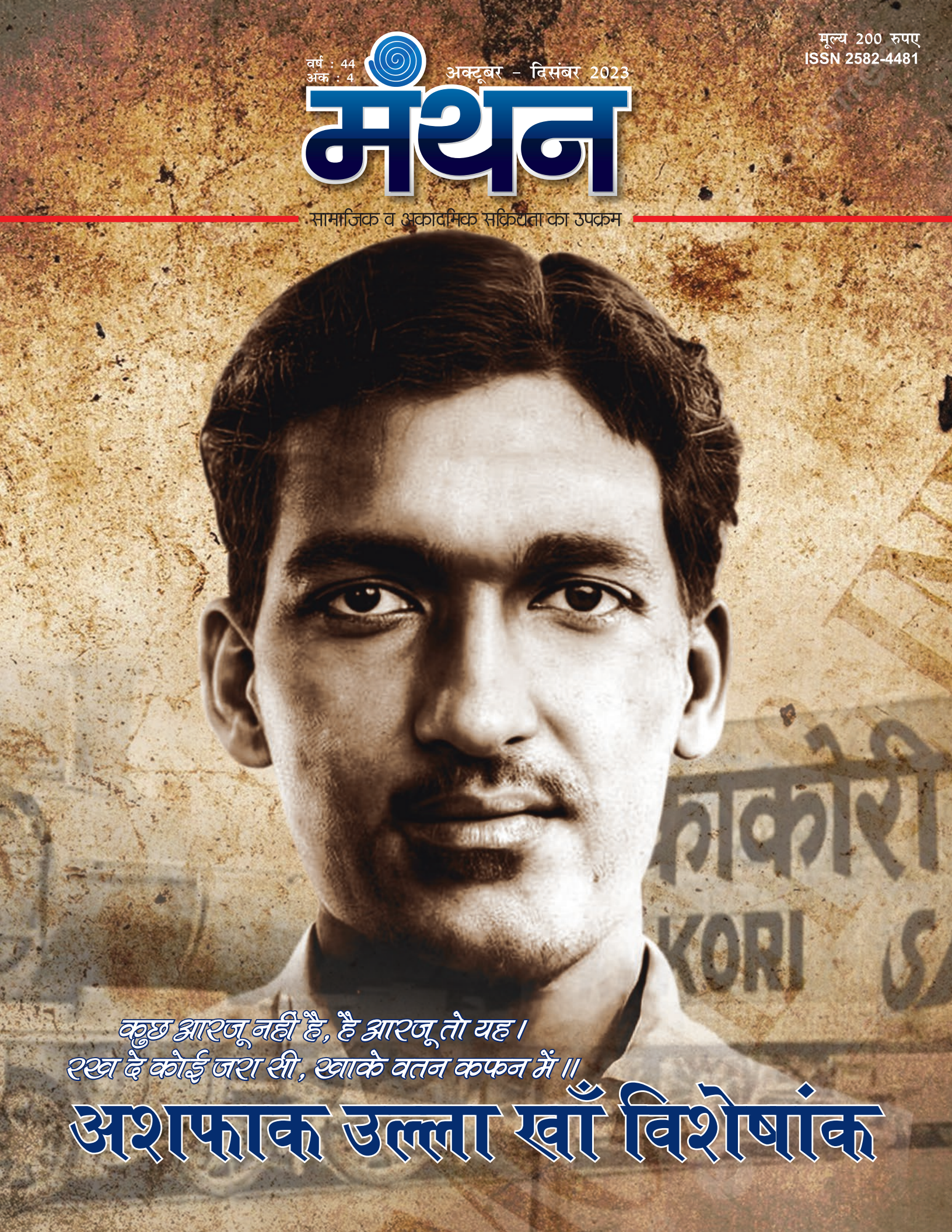

कुछ आरजू नहीं है, है आरजू तो यह।
रख दे कोई जरा सी, खाके वतन कफन में ।।

अशफाक उल्ला खाँ विशेषांक

प्रभात प्रकाशन

नवनूतन प्रकाशन की गौरवशाली परंपरा

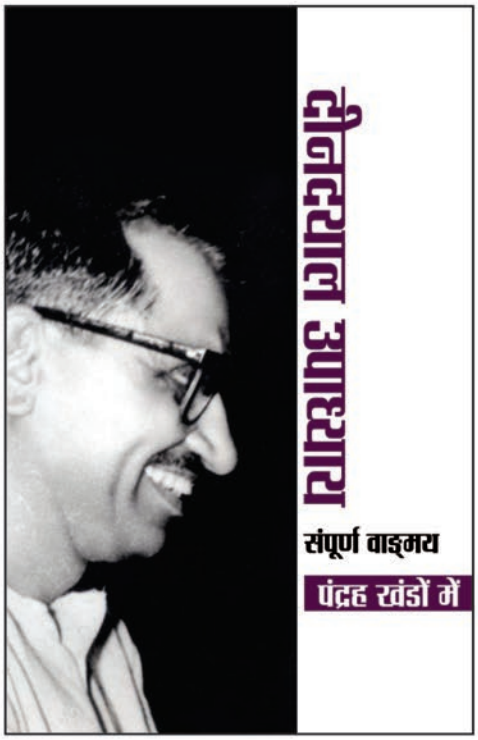

दीनदयाल उपाध्याय

संपूर्ण वाङ्मय (पंद्रह खंडों का सैट)

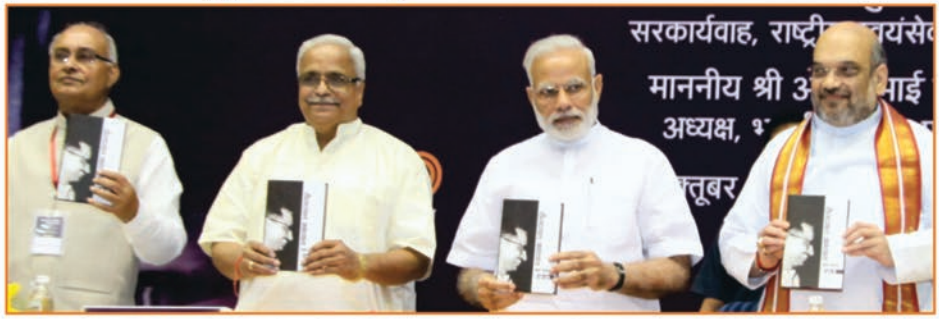

9 अक्तूबर, 2016 को नई दिल्ली के विज्ञान भवन में पं. दीनदयाल उपाध्याय जन्म शताब्दी वर्ष के अवसर पर डॉ. महेश चंद्र शर्मा द्वारा संपादित एवं प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय' के पंद्रह खंडों का लोकार्पण भारत के प्रधानमंत्री मान. श्री नरेंद्र मोदी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह मान. श्री सुरेश (भय्याजी) जोशी व भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष मान. श्री अमित शाह के करकमलों द्वारा संपन्न हुआ।

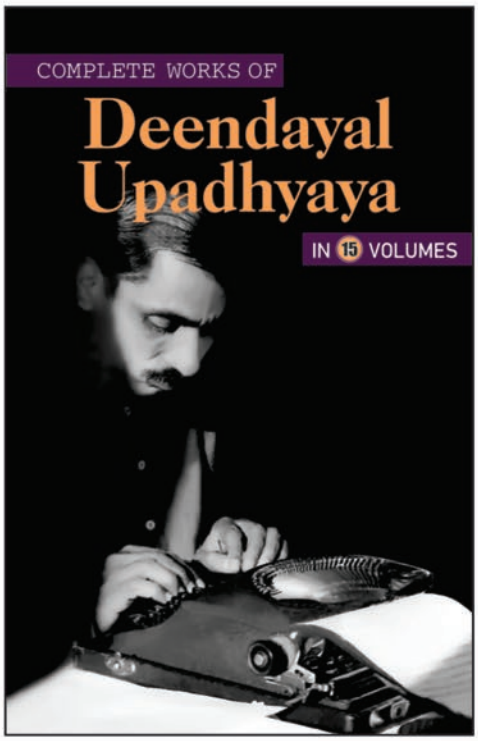

COMPLETE WORKS OF

DEENDAYAL UPADHYAYA

(Set of 15 Volumes)

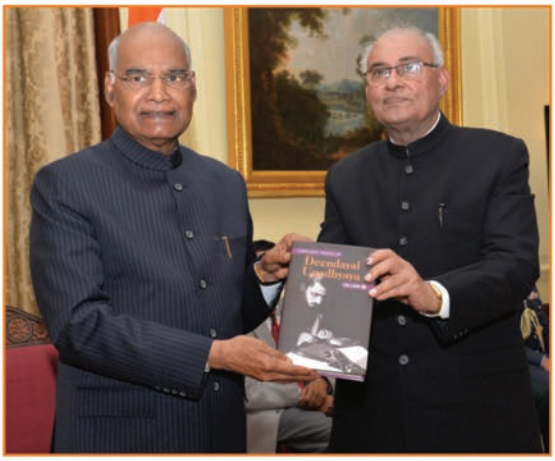

11 फरवरी, 2019 को भारत के राष्ट्रपति मान. श्री राम नाथ कोविंदजी को 'Complete Works of Deendayal Upadhyaya' की प्रथम प्रति भेंट करते हुए प्रधान संपादक डॉ. महेश चंद्र शर्मा

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001:2015 प्रकाशक
4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002
हेल्पलाइन नं. 7827007777 ☎ 011-23289777
E-mail : prabhatbooks@gmail.com ✤ Website : www.prabhatbooks.com

एकात्म मानवदर्शन
अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान
एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002
☎ 011-23210074
इ-मेल : ekatmrdfih@gmail.com

₹ 200/-

संपादक मंडल
श्री रामबहादुर राय
श्री अच्युतानंद मिश्र
श्री बलबीर पुंज
श्री अतुल जैन
डॉ. भारत दहिया
श्री इष्ट देव सांकृत्यायन

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

वर्ष : 44, अंक : 4 अक्टूबर-दिसंबर 2023

अशफाक उल्ला खाँ विशेषांक

संपादक
डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

प्रबंध संपादक
श्री अरविंद सिंह
+91-9868550000
me.arvindsingh@manthandigital.com

सज्जा
श्री नितिन पंवार
nitscopy@gmail.com

मुद्रण
ओसियन ट्रेडिंग को.
132, पटपड़गंज औद्योगिक क्षेत्र,
दिल्ली-110092

प्रकाशक
एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान
एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली–110002
दूरभाष : 011–23210074; ईमेलः info@manthandigital.com
Website: www.manthandigital.com

अनुक्रम

1.	लेखकों का परिचय		03
2.	संपादकीय		04
3.	अमर बलिदानी अशफाक के लिए राष्ट्रधर्म ही था सर्वोपरि	प्रदीप देसवाल	06
4.	धार्मिक कट्टरता के घोर विरोधी थे अशफाक	अशफाक उल्ला खाँ के पोते से प्रदीप देसवाल की बातचीत	14
5.	स्वाधीनता आंदोलन में मुसलमान	राम बहादुर राय	17
6.	द्विराष्ट्र सिद्धांत और उसका देशज प्रतिरोध	डॉ. फैयाज अहमद फैजी	26
7.	क्रांति के सृजनधर्मी विचारक बिस्मिल	मदनलाल वर्मा 'क्रांत'	31
8.	अतुल्य संगठनकर्ता और विचारक शचींद्र नाथ सान्याल	डॉ. चंद्रपाल सिंह	36
9.	चौरीचौरा विद्रोह के महान सेनानी सुकई की कहानी	इमामुद्दीन हुसैन	42
10.	मगफूर अहमद ऐजाजी - एक विस्मृत मुस्लिम स्वतंत्रता सेनानी	दीपेश चतुर्वेदी	47

आनुषंगिक आलेख

1.	काकोरी शहीदों के लिए प्रेम के आँसू	भगवती चरण वोहरा	52
2.	काकोरी के शहीदों के फाँसी के हालात	भगत सिंह	55
3.	शहीद अशफाक उल्ला का फाँसीघर से संदेश		59
4.	अशफाक की डायरी से		60
5.	अशफाक	राम प्रसाद बिस्मिल	62

लेखकों का परिचय

प्रदीप देसवाल पेशे से इंजीनियर हैं और दिल्ली के द्वारका उपनगर में स्थित प्रतिष्ठित नेताजी सुभाष प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय में कार्यपालक अभियंता के पद पर तैनात हैं। वे भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास, विशेष रूप से क्रांतिकारी आंदोलन, में गहन रुचि रखते हैं। 'राष्ट्र वंदना' के नाम से यूट्यूब चैनल भी चलाते हैं जहाँ भारत के स्वतंत्रता संग्राम पर प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध कराते हैं। भगत सिंह सहित अनेक क्रांतिकारियों पर सैकड़ों वीडियो बनाए हैं। वर्तमान में नेताजी सुभाष की गौरव गाथा पर वीडियोश्रृंखला चल रही है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रवादी कविताएँ लिखते हैं जिन्हें मंचों पर भी खूब सराहा जाता है।

रामबहादुर राय पद्मश्री से सम्मानित। हिंदुस्तान समाचार के समूह संपादक और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष। लोकनायक जयप्रकाश नारायण के साथ आपातकाल विरोधी आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। संपर्क : rbrai118@gmail.com

डॉ. फैयाज अहमद फैजी लेखक, अनुवादक, सामाजिक कार्यकर्ता एवं पेशे से यूनानी चिकित्सक हैं। पिछले कई वर्षों से देश के वंचित पसमांदा मुसलमानों के उत्पीड़न एवं अधिकार की बात विभिन्न मंचों से उठा रहे हैं। इन्होंने अनुच्छेद 370 के हटाए जाने और तीन तलाक विधेयक को मुस्लिम समाज के लिए हितकारी बताया है। ये समान नागरिक संहिता के भी समर्थक हैं। मुस्लिम सांप्रदायिकता तथा मुस्लिम समाज की कुरीतियों के विरोध में खुलकर बोलते, लिखते रहे हैं।

मदनलाल वर्मा 'क्रांत' मूलत: हिन्दी के कवि तथा लेखक हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने उर्दू, संस्कृत तथा अंग्रेजी में भी कविताएँ लिखी हैं। क्रान्तिकारी राम प्रसाद 'बिस्मिल' के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाशित "सरफरोशी की तमन्ना" उनकी उल्लेखनीय पुस्तक है। "क्रान्तिकारी हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना" विषय पर अतिविशिष्ट अनुसन्धान के लिए उन्हें भारत सरकार ने वर्ष 2004 में हिन्दी साहित्य की "सीनियर फैलोशिप" प्रदान की।

डॉ. चंद्रपाल सिंह दिल्ली विश्वविद्यालय के पीजीडीएवी कॉलेज में इतिहास के शिक्षक। 'भगत सिंह रीविजिटेड: हिस्ट्रियोग्राफी, बायोग्राफी ऐंड आइडियोलॉजी ऑफ द ग्रेट मार्टायर' (2011) तथा 'नेशनल एजुकेशन मूवमेंट: अ सागा फॉर क्वेस्ट फॉर आल्टरनेटिव्ज टु कोलोनियल एजुकेशन' (2012) प्रकाशित। आपकी शोधरुचियों में क्रांतिकारी आंदोलन और शिक्षा के इतिहास के अलावा भारतीय संविधान का उद्गम एवं निर्माण तथा जनगणना अध्ययन भी समाविष्ट हैं।

इमामुद्दीन हुसैन लेखक स्वतंत्र पत्रकार,पसमांदा सामाजिक कार्यकर्ता तथा सावित्रीबाई फुले जन साहित्य केंद्र, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) के संयोजक हैं।वर्तमान समय में गोरखपुर में रहते हैं। **संपर्क :** मो. 7071487233

दीपेश चतुर्वेदी हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय में इतिहास के शोधछात्र हैं। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से इतिहास में स्नातकोत्तर अध्ययन किया है। उनकी विशेषज्ञता का मूल क्षेत्र प्राचीन इतिहास है। उन्होंने जेआरएफ अर्हता प्राप्त करने के बाद दिल्ली विश्वविद्यालय के कई एनसीडब्ल्यूईबी केंद्रों में अध्यापन कार्य भी किया है। अनुसंधान की दृष्टि से उनकी रुचि के क्षेत्र हैं बौद्धिक इतिहास, संस्कृति, पुरातत्व और धर्म।

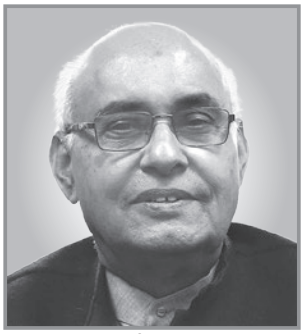

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

संपादकीय

मंथन के भगत सिंह विशेषांक में हम क्रांतिकारियों द्वारा आजादी के आंदोलन में निभाई गई लोमहर्षक भूमिका के विषय में पढ़ चुके हैं। हम सशस्त्र प्रतिकार के निर्णायक प्रयत्नों का अध्ययन सुभाष चंद्र बोस विशेषांक में कर चुके हैं। इसी सशस्त्र-समर का एक उल्लेखनीय नाम है अशफाक उल्ला खाँ। क्रांतिकारी आदोलन के माध्यम से फाँसी के फंदे को चूमने वाला यह एकमात्र मुस्लिम क्रांतिकारी था। इनके मुस्लिम होने को इतिहास के पन्नों में पुनः पुनः रेखांकित किया गया है।

मंथन का यह विशेषांक अमर शहीद अशफाक उल्ला खाँ के बलिदान के साथ ही आजादी के आंदोलन में मुस्लिम भूमिका की भी पड़ताल कर रहा है। भारत विभाजन में मुस्लिम लीग की भूमिका को ही सामान्य व्यक्ति आजादी के आंदोलन में मुसलमानों की भूमिका के रूप में देखता है। *मंथन* इस संदर्भ की संपूर्णता को अनुसंधानित करने की आकांक्षा के साथ इस विशेषांक का संयोजन कर रहा है। मुस्लिम लीग को तो सभी जानते हैं, लेकिन मोमिन कॉन्फ्रेंस को लोग सामान्यतः नहीं जानते। क्रांतिकारियों की फाँसी को सब जानते हैं, इसीलिए अशफाक उल्ला खाँ भी प्रसिद्ध हुए, लेकिन जिस चौरीचौरा कांड के बाद महात्मा गांधी ने जागृति के शिखर पर पहुँचे असहयोग आंदोलन को वापस ले लिया था, उस आंदोलन के कारण भी कई लोगों को फाँसी की सजा हुई। महात्मा गांधी और चौरीचौरा की आवाज में बलिदान का वह स्वर दब गया। एक गरीब मुसलमान नौजवान की फाँसी की कहानी आप इस अंक में पढ़ सकेंगे।

यद्यपि स्वयं अशफाक मुस्लिम समाज के अशराफ वर्ग से थे, लेकिन स्वतंत्रता के संघर्ष में पसमांदा समुदाय का संदर्भ भी बहुत महत्वपूर्ण है। श्री राम बहादुर राय एवं डॉ. फैयाज अहमद फैजी के आलेख इसकी संगत प्रासंगिकता को व्यक्त करते हैं। यह संदर्भ बहुत व्यापक है, *मंथन* का यह अंक किंचित इसे स्पर्श करता है।

1885 में अपनी स्थापना के बाद कांग्रेस ब्रिटिश साम्राज्ञी के प्रति वफादारी के साथ अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीयों की सत्ता में सहभागिता की माँग करती थी। उसी का निर्णायक परिणाम था 1946 में भारतीय संविधान सभा का गठन। यह एक लंबी कहानी है। यहाँ इसका उल्लेख इसलिए किया जा रहा है कि उस इतिहास को जानने की जरूरत है, जिसमें साम्राज्यवादी

सत्ता की सहभागिता से कांग्रेस राष्ट्रीय स्वराज्य का आंदोलन बन गई। इसमें महत्त्वपूर्ण है 1905 में बंग-भंग के खिलाफ लड़ा गया स्वदेशी एवं वंदेमातरम् का आंदोलन। परिणामत: 1907 में कांग्रेस का सुराज्यवादी व स्वराज्यवादी विभाजन हो गया। वस्तुत: इस विभाजन के बाद 1907 के पहले की कांग्रेस लगभग समाप्त हो गई। इस विभाजन में स्वराज्यवादी खेमे का नेतृत्व श्री अरविंद कर रहे थे। वे योगी बनकर पांडिचेरी चले गए। लोकमान्य तिलक को अंग्रेज सरकार ने मांडले जेल भेज दिया। जब तिलक जेल से बाहर आए तब कांग्रेस मृतप्राय थी। इसी काल में अंग्रेजों ने मुस्लिम लीग की स्थापना करवा दी थी। इसके बाद 1909 में मुसलमानों को पृथक निर्वाचन अधिकार दे दिया था। वृद्ध एवं थके हुए तिलक के आगमन ने स्वराज्यवादियों का उत्साह बढ़ाया, 1916 के लखनऊ अधिवेशन में लोकमान्य तिलक का देवदुर्लभ स्वागत हुआ। यही वह अधिवेशन है जिसमें मुस्लिम लीग व कांग्रेस का समझौता हुआ। भारत विभाजन की राजनैतिक कहानी का प्रथम अध्याय लिखा गया। लोकमान्य तिलक को अधिक समय नहीं मिला। वे दिवंगत हो गए।

कांग्रेस की कमान महात्मा गांधी के हाथ में आ गई तथा कांग्रेस एक अखिल भारतीय जन आंदोलन बन गई। असहयोग आंदोलन में लोगों ने अद्‌भुत उत्साह के साथ भाग लिया। चौरीचौरा कांड के बाद महात्मा जी ने हठात् आंदोलन वापस ले लिया। राष्ट्रीय उत्साह पर पानी पड़ गया। इस निर्णय से नाराज नौजवानों ने क्रांति की मशाल उठा ली। रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में 'सरफरोशी की तमन्ना' लेकर नौजवान निकल पड़े। उसी क्रांति-कर्म की एक घटना है 'काकोरी-कांड'। क्या था यह कांड, किस किस को जेल व फाँसी हुई, हम इस अंक से जानेंगे। हमारे विशेषांक नायक अशफाक उल्ला खाँ भी इसी कांड के कारण फाँसी पर लटकाए गए। अशफाक ने अपनी अंतिम इच्छा इस तरह व्यक्त की थी:

कुछ आरजू नहीं है, है आरजू तो यह।
रख दे कोई जरा सी, खाके वतन कफन में।

बताएँ, कैसा लगा आपको यह अंक। अगला अंक वर्ष का पहला अंक होगा, 'विधायन विशेषांक'। प्रतीक्षा करें।

शुभम्।

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा
mahesh.chandra.sharma@live.com

प्रदीप देसवाल

अमर बलिदानी अशफाक के लिए राष्ट्रधर्म ही था सर्वोपरि

जब भी अमर बलिदानी क्रांतिकारियों की बात आती है तो बिस्मिल और अशफाक की दोस्ती की मिसाल दी जाती है। राष्ट्रधर्म को ही सर्वोपरि मानने वाले अशफाक की एक दास्तान

"हजार दु:ख क्यों न आएँ - बहरे जखर (तूफानी समुद्र) दरमियान में मौजें मारे - आतिशी पहाड़ क्यों न हायल (बीच में) हो जाएँ, मगर ऐ आजादी के शेरों, अपना-अपना गरम खून मातृभूमि पर छिड़कते हुए जान मातृवेदी पर कुर्बान करते हुए आगे बढ़ते चले जाओ।"[1]

"भारत माता के रंगमंच पर अब हम अपना पार्ट अदा कर चुके हैं। हमने गलत-सही जो कुछ किया, वह स्वतंत्रता प्राप्ति की भावना से किया। हमारे इस काम की कोई प्रशंसा करेगा, तो कोई निंदा, किंतु हमारे साहस और वीरता की प्रशंसा हमारे दुश्मनों तक को करनी पड़ी है। क्रांतिकारी बड़े वीर योद्धा और बड़े अच्छे वेदांती होते हैं। वे सदैव अपने देश की भलाई सोचा करते हैं।"[2]

"भारतीय भाइयों, आप कोई हों, चाहे जिस धर्म या संप्रदाय के अनुयायी हों, परंतु आप देशहित में एक होकर योग दीजिए। आप लोग व्यर्थ में लड़ झगड़ रहे हैं। सब धर्म एक हैं, रास्ते चाहे भिन्न-भिन्न हों, परंतु लक्ष्य सबका एक ही है। फिर यह झगड़ा-बखेड़ा क्यों?"[3]

"पहले हिंदुस्तान को आजाद करो, फिर कुछ और सोचना। खुदा ने जिसके लिए जो रास्ता मुंतखिब कर दिया है, वह उसी पर रहेगा। तुम किसी को भी नहीं हटा सकते। आपस में मिल-जुलकर रहो और मुत्तहिद हो जाओ, नहीं तो सारे हिंदुस्तान की बदबख्ती का बार तुम्हारी गर्दन पर है और गुलामी का बाइस तुम हो।"[4]

"मेरे भाई, मेरे मित्र मेरे बाद रोएँगे और मैं मातृभूमि के प्रति उनकी उदासीनता और बेवफाई देखकर आज रो रहा हूँ।"[5]

हृदय को झकझोर देने वाले ये शब्द अमर बलिदानी अशफाक उल्ला खाँ के हैं। वर्ष 1920 में असहयोग आंदोलन प्रारंभ करते हुए गांधीजी ने एक वर्ष में स्वराज का भरोसा दिया था जिस पर विश्वास करके क्रांतिकारी भी बम और पिस्तौल छोड़कर गांधीजी के पीछे-पीछे हो लिए थे। लेकिन, 4 फरवरी, 1922 को हुई चौरीचौरा की घटना के बाद जब गांधीजी ने असहयोग आंदोलन स्थगित कर दिया तो देश भर के युवा घोर निराशा के अंधकार में घिर गए। इसके बाद वर्ष 1923 में कांग्रेस ने कौंसिलों में जाने का निर्णय ले लिया।

तब क्रांतिकारियों ने पुन: संगठित होकर क्रांति की राह पकड़ ली थी। शचींद्र नाथ सान्याल, योगेशचंद्र चटर्जी और रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में उत्तर भारत में एक संगठन खड़ा हुआ जिसका नाम था 'हिंदुस्तान प्रजातांत्रिक संघ'। इसी दल के सदस्य थे अशफाक उल्ला खाँ जो रामप्रसाद बिस्मिल की ही तरह संयुक्त प्रांत में शाहजहाँपुर के रहने वाले थे। दोनों की मित्रता की कहानियाँ आज भी कही जाती हैं। काकोरी षड्यंत्र केस के फैसले में स्पेशल सेशन जज जे आर डब्लू बैनेट ने अशफाक उल्ला के बारे में लिखा था - "वह रामप्रसाद का दायाँ हाथ था और उनके बाद शाहजहाँपुर में पार्टी का सबसे महत्त्वपूर्ण सदस्य था।"[6] अशफाक उल्ला भारत की स्वतंत्रता के लिए फाँसी चढ़ने वाले पहले मुसलमान क्रांतिकारी थे।

जब अशफाक उल्ला शाहजहाँपुर के मिशन स्कूल में 7वीं कक्षा में पढ़ते थे। तब 10वीं कक्षा के छात्र राजाराम भारतीय को मैनपुरी षड्यंत्र केस के सिलसिले में पुलिस ने गिरफ्तार किया। अशफाक के पूछने पर एक छात्र ने उन्हें बताया था कि राजाराम एक खुफिया सोसाइटी के सदस्य थे, कोई डाकू या कातिल नहीं। इस पर अशफाक ने हँसते हुए कहा कि तुम भी वही मालूम होते हो, तुम्हें भी गिरफ्तार करा दूंगा। अशफाक की बात सुनकर उस छात्र ने गर्व से कहा कि मैं

देश के लिए मरने को तैयार हूँ। अशफाक लिखते हैं कि उसने कुछ ऐसी शान और तर्ज से कहा था कि मैं उसको कभी न भूला।[7]

अगले वर्ष, जब अशफाक 8वीं कक्षा में दाखिल हुए तो अंग्रेजी के अध्यापक द्वारा पढ़ाई गई देशप्रेम की कविता सुनकर देश के लिए सब कुछ त्याग देने का भाव प्रबल हुआ था। इसके बाद अशफाक को किताबें पढ़ने का शौक पैदा हुआ। उन्हें इस बात का अफसोस हुआ कि उन्होंने यूँ ही खेल-कूद में समय गँवा दिया था। वे लिखते हैं - *"हुब्बल-वतनी के लिए तालीम एक लाजमी अम्र (आवश्यक कार्य) था। अगर जज्बाते-हुब्बल-वतनी बच्चों में शुरू से पैदा किए जाएँ और दुनिया के बड़े लोगों की जिंदगियाँ पढ़ाई जाएँ तो बच्चा पढ़ने का हमेशा शौकीन रहेगा और बड़ा होकर बिगड़ेगा नहीं।"*[8]

इसके बाद उनकी मित्रता बनारसी लाल से हुई जो खुफिया सोसाइटी का सदस्य था और रामप्रसाद बिस्मिल को जानता था। यह बनारसी लाल आगे चलकर कमजोर साबित हुआ और काकोरी षड्यंत्र केस में सरकारी गवाह बना। रामप्रसाद मैनपुरी षड्यंत्र केस में फरार चल रहे थे। जब 1920 के बादशाही फरमान के बाद मैनपुरी केस के कैदियों की रिहाई हुई तो रामप्रसाद के सिर से भी गिरफ्तारी की तलवार हट गई। वे शाहजहाँपुर लौट आए थे। रामप्रसाद उर्दू स्कूल में अशफाक के बड़े भाई रियासत उल्ला के सहपाठी रह चुके थे और मित्र थे। बाद में वे मिशन स्कूल में दाखिल हुए और कुछ समय बाद अशफाक भी मिशन स्कूल में दाखिल हुए, लेकिन उन दिनों रामप्रसाद के साथ अशफाक के संबंध नहीं थे।

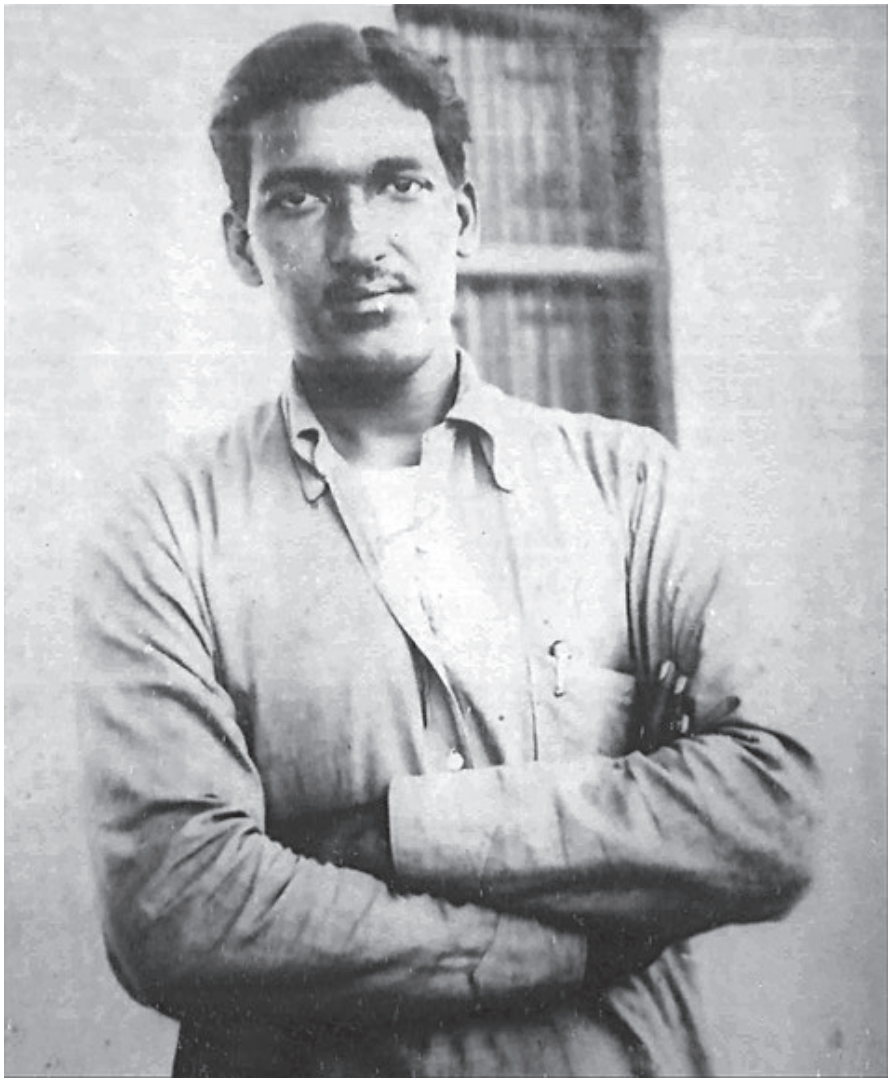

मैनपुरी षड्यंत्र केस से मुक्त होने के बाद जब रामप्रसाद बिस्मिल शाहजहाँपुर आए तो अशफाक ने उनसे मुलाकात की और उनके गुप्त क्रांतिकारी दल से जुड़ने की इच्छा प्रकट की। किंतु, रामप्रसाद ने कोई रुचि नहीं दिखाई। यहाँ दो कारण प्रमुख रूप से नजर आते हैं - अशफाक की पारिवारिक पृष्ठभूमि जिसमें अनेक पूर्वज सरकारी अधिकारी रहे थे और दूसरा उनका मुसलमान होना। उस समय तक मुसलमान क्रांतिकारी संगठनों से दूर ही रहे थे, इसलिए रामप्रसाद उन पर विश्वास नहीं कर सके। अशफाक उल्ला लिखते हैं - *"वह इतनी सर्द-मेहरी (उदासीनता) से मिले थे कि मुझे बहुत दु:ख हुआ था जिसकी वह माफी अक्सर माँग लिया करते थे।"*[9] इसी घटना के बारे में रामप्रसाद अपनी आत्मकथा में लिखते हैं - *"जब मैं बादशाही ऐलान के बाद शाहजहाँपुर आया था, तो तुमसे स्कूल में भेंट हुई थी। तुम्हारी मुझसे मिलने की बड़ी हार्दिक इच्छा थी। तुमने मुझसे मैनपुरी षड्यंत्र के संबंध में कुछ बातचीत करनी चाही थी। मैंने यह समझकर कि एक स्कूल का मुसलमान विद्यार्थी मुझसे इस प्रकार की बातचीत क्यों करता है, तुम्हारी बातों का उत्तर उपेक्षा की दृष्टि से दे दिया था। तुम्हें उस समय बड़ा खेद हुआ था।"*[10]

बाद में, बनारसी लाल के माध्यम से रामप्रसाद बिस्मिल से अशफाक की पुन: भेंट हुई और फिर तो ऐसी मित्रता हुई जो सदियों तक नहीं भुलाई जा सकेगी। अशफाक लिखते हैं कि मैंने बनारसी लाल से कहा कि रामप्रसाद के पास ले चलो और मुझको इंट्रोड्यूस करा दो।[11] रामप्रसाद बिस्मिल इसके बारे में लिखते हैं - "तुमने अपने इरादे को यूँ ही नहीं छोड़ दिया, अपने निश्चय पर डटे रहे। जिस प्रकार हो सका कांग्रेस में बात की। अपने इष्ट-मित्रों द्वारा इस बात का विश्वास दिलाने की कोशिश की कि तुम बनावटी आदमी नहीं, तुम्हारे दिल में मुल्क की खिदमत करने की ख्वाहिश थी। अंत में तुम्हारी विजय हुई।"[12] रामप्रसाद बिस्मिल की बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अशफाक क्रांतिकारी दल में शामिल होने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ थे जो बहुत असामान्य बात थी। बहुधा ऐसा होता था कि पुराने अनुभवी क्रांतिकारी युवाओं को

खोजते थे दल में भर्ती करने के लिए, मगर यहाँ उल्टा था। अशफाक क्रांतिकारी बनने की जिद पर अड़े थे ताकि भारत माता को पराधीनता के बंधनों से मुक्त करने के लिए आत्मोत्सर्ग कर सकें।

रामप्रसाद बिस्मिल लिखते हैं - "*तुम्हारी कोशिशों ने मेरे दिल में जगह पैदा कर ली। थोड़े दिनों में ही तुम मेरे छोटे भाई के सामान थे, किंतु छोटे भाई बनकर तुम्हें संतोष न हुआ। तुम समानता का अधिकार चाहते थे, तुम मित्र की श्रेणी में अपनी गणना चाहते थे। वही हुआ। तुम सच्चे मित्र बन गए। सबको आश्चर्य था कि एक कट्टर आर्य-समाजी और मुसलमान का मेल कैसा? मैं मुसलमानों की शुद्धि करता था। आर्य-समाज मंदिर में मेरा निवास था, किंतु तुम इन बातों की किंचित मात्र चिंता न करते थे।*"[13]

अशफाक उल्ला ने रामप्रसाद बिस्मिल के साथ असहयोग आंदोलन में भी भाग लिया था। वे दिसंबर 1921 में अहमदाबाद और दिसंबर 1922 में गया में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में भी शामिल हुए थे। प्रथम विश्व युद्ध के बाद अंग्रेजों द्वारा तुर्की के उस ओटोमन साम्राज्य को तोड़ दिया गया जिसके सुल्तान को विश्व भर के मुसलमान अपना सर्वोच्च धार्मिक व राजनीतिक नेता मानते थे। भारत के मुसलामानों में भी विरुद्ध भारी रोष का वातावरण था। वर्ष 1920 में अली बंधुओं के नेतृत्व में विरुद्ध तुर्की के खलीफा के समर्थन में भारत में खिलाफत आंदोलन प्रारंभ हुआ। गांधीजी ने न केवल इस आंदोलन का समर्थन किया था बल्कि इसे कांग्रेस के असहयोग आंदोलन का अभिन्न अंग बना दिया था। यद्यपि इस प्रयास ने हिंदू व मुसलमानों को एक साथ ला दिया था जो राष्ट्रीय एकता के लिए अत्यंत खुशी की बात होती, यदि इसके कारण और उद्देश्य भी एक होते। जहाँ कांग्रेस का ध्येय भारत में स्वराज की स्थापना था वहीं खिलाफत आंदोलन तुर्की के खलीफा के समर्थन में था।

खिलाफत आंदोलन ने भारतीय मुसलमानों को राष्ट्रीय भाव से नहीं बल्कि धार्मिक भाव से प्रेरित कर अंग्रेजों के विरुद्ध खड़ा किया था। उन दिनों के वातावरण पर प्रकाश डालते हुए स्वयं अशफाक उल्ला लिखते हैं - "*मैं रात-दिन इसी दुआ में रहता था कि तुर्क हिंदुस्तान फतह कर लें और यहाँ बादशाह बन जाएँ, तो हम खलीफा-ए-वक्त की रियाया बन जाएँ। ---------- अंग्रेजों से नफरत पैदा हो गई। मेरा तो यही ख्याल था कि यही बानिए फसाद (फसाद की जड़) है और इनकी हुकूमत ही नेस्त-ओ-नाबूत होनी चाहिए। यह इस तरह हो कि अफगानी या तुर्की हमला कर दें और हम लोग बगावत कर दें। फिर इनकी सल्तनत दरहम-बरहम (बिखर जाना) हो जाएगी बजाय ईसाइयों के मुसलमानों की रियाया हो जाएँगे।*"[14]

बचपन में अशफाक उल्ला के विचार सांप्रदायिक थे। वे लिखते हैं - "*मेरा ख्याल उस जमाने में या उसके बाद हिंदुओं के विरुद्ध बहुत था और बाद को बहुत हो गया था। चूँकि हमारे करमफरमा एक मास्टर साहब थे। जब मैं गवर्नमेंट स्कूल में पढ़ता था, वह हमेशा हिंदू-मुस्लिम में बहुत इम्तेयाज करते थे। जो मैं अब कहूंगा कि उस्ताद का कमीनापन है। और यही लोग मुल्क के असल में दुश्मन हैं।*"[15] अशफाक लिखते हैं कि आज मेरा दिल ऐसा ही कुशादा (खुला हुआ) एक हिंदू के लिए भी जैसा एक मुसलमान के लिए है।

स्कूल के दिनों की शिक्षा, वहाँ का वातावरण किस प्रकार किसी व्यक्ति के विचारों को प्रभावित करता है, इसके बारे में भी अशफाक बड़े विस्तार से लिखते हैं। यदि एक शिक्षक के सांप्रदायिक विचारों ने बाल अशफाक के मन में हिंदुओं के प्रति कटुता का भाव मजबूत किया तो वहीं स्कूल में ही कुछ ऐसे शिक्षक भी मिले जिन्होंने उन्हें देशभक्ति का पहला सबक सिखाया।

अशफाक के हृदय में देशप्रेम के अंकुर स्कूल में ही फूटने शुरू हुए। एक श्रेष्ठ शिक्षक किसी भी व्यक्ति के जीवन में क्या फर्क डाल सकता है, यह अशफाक के जीवन से स्पष्ट हो जाता है। वे स्वयं लिखते हैं - "*जब मैं आठवीं क्लास में पास होकर आया, मेरे कोर्स में इंग्लिश की किताब के दो सबक थे - एक तो लव ऑफ कंट्री (वतनी मुहब्बत) सर वाल्टर स्कॉट की लिखी हुई नज्म और दूसरा सबक जिसमें होरेशस का किस्सा था जिसमें कि उसने एक स्पीच दी थी जबकि मुल्क पर गनीम (शत्रु) ने चढ़ाई की थी और उसने कहा था कि अगर पुल तोड़ दिया जाए तो टाइबर नदी को पार करके फौज नहीं आ सकती और न कोई दूसरा रास्ता है। मैं जाता हूँ और इस तंग रास्ते में मैं मय तीन साथियों के खड़े होकर लड़ूँगा और इधर पुल नदी में तोड़कर डाल दिया जाए। गरज कि ऐसा ही हुआ और रोम बच गया। मेरे मास्टर साहब ने कुछ ऐसी तर्ज से इस सबक को पढ़ाया कि तन-बदन में आग लग गई।*

मेरी हुब्बल-वतनी (देशभक्ति) की बुनियाद महज इसी सबक से पड़ी। सैकड़ों किताबें पढ़ लीं और हजारों लेक्चर सुन डाले, मगर न मालूम स्कूल की वह कौन सी साअत थी, जिस दिन यह सबक मास्टर साहब ने पढ़ाया था। गरज कि मुझे हुब्बल-वतनी के प्लेटफॉर्म पर लाने वाली और वतन की मुहब्बत की आग भड़काने वाली सबसे अव्वल यही नज्म और यही सबक था।"[16] *अशफाक उल्ला स्कूल के उन्हीं दिनों का एक और किस्सा लिखते हैं - "इसके बाद मेरे एक मास्टर साहब ने जिनका नाम अब मैं मसलेहतन (विशेष कारणवश) नहीं ले रहा, क्योंकि इससे मुमकिन है कि उन्हें कुछ परेशानी महसूस हो, मुझे एक किताब दी और कहा कि मैं तुमको इसलिए देता हूँ कि तुम इसके अहल (योग्य) साबित होते हो। उसका नाम था श्दुनिया-भर के मुहिब्बाने-वतन (Patriots of the World)। मैंने उसको पढ़ा और यह इंप्रेशन मेरे दिल पर पड़ा कि वतन पर जो मर मिटा, उसने जिंदगी-ए-जावेद (अमरत्व) पाई।*[17]

इन दो उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि स्कूल के उन अज्ञात अध्यापकों ने अशफाक उल्ला को देशप्रेम का पहला सबक सिखाया। समय के साथ इस बीज में अंकुर फूटा और यह पौधा बड़ा होता गया।

अशफाक उल्ला के पूर्वज सरकारी नौकरियों में थे। उनके पिता मुहम्मद शफीक उल्ला खाँ सब-इंस्पेक्टर पुलिस थे। वे स्वाभिमानी व्यक्ति थे लेकिन भारत की स्वतंत्रता के आंदोलन से उनका कुछ लेना-देना नहीं था। ननिहाल वाले तो 1857 के संघर्ष में अंग्रेजों का साथ दे रहे थे जिसका अशफाक उल्ला को बड़ा मलाल था। उनकी माँ के दादा और उनके भाई सब जज और डिप्टी कलेक्टर थे। अशफाक लिखते हैं - "*मैं इसको बायसे-सदनंग (शर्मिंदगी का कारण) समझता हूँ कि जब*

मुल्क के लोगों को अहसासे-आजादी पैदा हो और वह अपना खून मिस्ल पानी के बहाएँ, अपने बच्चों की कुर्बानी कुर्बानगाहे-वतन (वतन की बलिवेदी) पर चढ़ाएँ, अपनी दौलत, अपनी आबरू, मकान, गरज कि हर शै हँसी-खुशी के साथ आजादी और महज आजादी-ए-मजहब के लिए निसार कर दें, फिर उनके साथ फरेब करना, उनके खिलाफ साजिश करना, उनकी स्कीमों को तहस-नहस करने की कोशिश करना और वतनी दुश्मनों की इमदाद करना अगर शर्म और हजार शर्म की बात नहीं तो और क्या है?"[18] सच तो यह है कि मुकदमे के दौरान अशफाक उल्ला को निर्दोष साबित करने के प्रयास में उनके बचाव में उनके वकील ने उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि का भी हवाला दिया था।[19]

अशफाक के पूर्वजों में अंग्रेजों के प्रति घृणा भाव तो दिखता है किंतु अपनी मातृभूमि की पराधीनता से उन्हें कोई परेशानी हुई हो ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता। अशफाक उल्ला अपने ददिहाल वाले पूर्वजों के बारे में लिखते हैं - "इल्म से इनको नफरत, हाथ-पैर हिलाने से इनको दुश्मनी, और अंग्रेजी पढ़ने को एक बड़ा कुफ्र समझा किए।"[20] वे आगे लिखते हैं - "ये लोग किस्मत पर इतना भरोसा किए हुए हैं कि दुनियावी अमूर (सांसारिक कामकाज) में कोशिश करना गुनाहे-अजीम समझते हैं।[21] अंग्रेजी की किताब को हाथ लगाना, हाथ का नजिस (अपवित्र) हो जाना समझते थे।"[22] अंग्रेजी के प्रति अपने पूर्वजों की घृणा के बारे में हुए अशफाक लिखते हैं - *"हमारे एक अजीज अपनी अंग्रेजी की किताब अपने एक करीबी रिश्तेदार के यहाँ इत्तफाकन भूल आए तो उन्होंने नौकर से चिमटे से पकड़वाकर उसको अलग रखवा दी। अगर वह साइंस से वाकिफ होते तो यह जानकर कि धातु जो कि कंडक्टर है, तो हरगिज ही चिमटे से न थमवाते, बल्कि लकड़ी की चीज से अलहैदा करवाते।"*[23]

ऐसे वातावरण में पल-बढ़कर अशफाक एक संपूर्ण क्रांतिकारी सिद्ध हुए। स्कूल के दिनों में किसी घनिष्ठ मित्र के स्वार्थपरक व्यवहार ने भी अशफाक को क्रांति की राह पर आगे बढ़ाने में योगदान दिया। उन्हें इस बात से बहुत कष्ट पहुँचा था कि जिसे वे दिलोजान से मुहब्बत करते थे, उसने हमेशा तकलीफ ही तकलीफ दी। वे लिखते हैं - *"मुझको रिवोल्यूशनरी इन्हीं डिसअपोइंटमेंट्स (निराशाओं) ने ही बनाया और मैंने जहाँ तक तजुर्बा किया, मैं इसी नतीजे पर पहुँचा कि यह डिसअपोइंटमेंट्स ही हैं जो इंसान को उसकी मौत से बेखौफ बना देते हैं। मुहब्बत का माद्दा जिसके दिल में होगा वही देश के लिए, देश-भाइयों के लिए, सबके लिए सब कुछ कर गुजरेगा।"*[24]

रामप्रसाद बिस्मिल एक पक्के आर्यसमाजी थे, जबकि अशफाक एक पक्के-सच्चे मुसलमान थे। इसके बावजूद उनकी दोस्ती क्रांतिकारी दल के लिए ही नहीं, बल्कि अन्य लोगों के लिए भी एक मिसाल बन गई थी। रामप्रसाद आर्यसमाज में रहने लगे थे, वहीं यज्ञ भी करते थे और अशफाक उल्ला वहीं उनसे मिलने आते थे वहीं आर्यसमाज के प्रांगण में नमाज पढ़ लिया करते थे।[25] रामप्रसाद बिस्मिल मुसलमानों की घर वापसी के लिए शुद्धि किया करते थे, किंतु अशफाक उल्ला के साथ उनकी मित्रता अटूट थी।

अशफाक के पूर्वजों में अंग्रेजों के प्रति घृणा भाव तो दिखता है किंतु अपनी मातृभूमि की पराधीनता से उन्हें कोई परेशानी हुई हो ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता। अशफाक उल्ला अपने ददिहाल वाले पूर्वजों के बारे में लिखते हैं - इल्म से इनको नफरत, हाथ-पैर हिलाने से इनको दुश्मनी, और अंग्रेजी पढ़ने को एक बड़ा कुफ्र समझा किए। वे आगे लिखते हैं - ये लोग किस्मत पर इतना भरोसा किए हुए हैं कि दुनियावी अमूर में कोशिश करना गुनाहे-अजीम समझते हैं। अंग्रेजी की किताब को हाथ लगाना, हाथ का नजिस हो जाना समझते थे

अपनी आत्मकथा में रामप्रसाद बिस्मिल स्वयं लिखते हैं - *"मेरे कुछ साथी तुम्हें मुसलमान होने के कारण घृणा की दृष्टि से देखते थे, किंतु तुम अपने निश्चय पर दृढ़ थे। मेरे पास आर्य समाज मंदिर में आते-जाते थे। हिंदू-मुस्लिम झगड़ा होने पर तुम्हारे मुहल्ले के सब कोई तुम्हें खुल्लमखुल्ला गालियाँ देते थे, काफिर के नाम से पुकारते थे, पर तुम कभी भी उनके विचारों से सहमत न हुए। सदैव हिंदू-मुस्लिम ऐक्य के पक्षपाती रहे। तुम एक सच्चे मुसलमान तथा सच्चे स्वदेश-भक्त थे। तुम्हें यदि जीवन में कोई विचार था तो यही कि मुसलामानों को खुदा अक्ल देता कि वे हिंदुओं के साथ मिल करके हिंदुस्तान की भलाई करते। जब मैं हिंदी में कोई लेख या पुस्तक लिखता तो तुम सदैव यही अनुरोध करते कि उर्दू में क्यों नहीं लिखते, जो मुसलमान भी पढ़ सकें? तुमने स्वदेश-भक्ति के भावों को भली-भाँति समझने के लिए ही हिंदी का अच्छा अध्ययन किया। अपने घर पर जब माताजी तथा भरतजी से बातचीत करते थे, तो तुम्हारे मुँह से हिंदी शब्द निकल जाते थे, जिससे सबको बड़ा आश्चर्य होता था।*

तुम्हारी इस प्रकार की प्रवृत्ति को देख कर बहुतों को संदेह होता था कि कहीं इस्लाम-धर्म त्याग कर शुद्धि न करा लो। पर तुम्हारा हृदय तो किसी प्रकार अशुद्ध न था, फिर तुम शुद्धि किस वस्तु की कराते?"[26]

रामप्रसाद बिस्मिल की बातों से पता चलता है कि अशफाक उल्ला धार्मिक मामलों में अत्यंत उदार और संकीर्णताओं से मुक्त थे। रामप्रसाद बिस्मिल एक और घटना का जिक्र करते हैं - *"एक समय जब तुम्हारे हृदयकंप (Palpitation of heart) का दौरा हुआ, तुम अचेत थे, तुम्हारे मुँह से बारंबार 'राम', 'हाय राम' शब्द निकल रहे थे। पास खड़े भाई-बांधवों को आश्चर्य था कि 'राम', 'राम' कहता है। कहते कि 'अल्लाह', 'अल्लाह' कहो, पर तुम्हारी 'राम-राम' की रट थी। उसी समय किसी मित्र का आगमन हुआ, जो 'राम' के भेद को जानते थे। तुरंत मैं बुलाया गया। मुझसे मिलने पर तुम्हें शांति हुई, तब सब लोग 'राम-राम' के भेद को समझे।"*[27]

वर्ष 1922 में असहयोग आंदोलन और खिलाफत आंदोलन की समाप्ति के साथ

ही हिंदू व मुसलमान की एकता को भी ग्रहण लग गया। अलग-अलग स्थानों पर सांप्रदायिक दंगे होने लगे। गुजरात के मेहसाणा जिले के विसनगर में रामनवमी के जुलूस के विरोध में मुसलमानों द्वारा तलवारें निकाल ली गईं। विसनगर की परिस्थितियों से चिंतित गांधीजी ने 4 मई, 1924 को नवजीवन में लंबा लेख लिखा।[28]

वैसे तो अगस्त 1921 में केरल के मालाबार में हुए मोपला विद्रोह ने भी सांप्रदायिक सौहार्द के ताने-बाने को तार-तार कर दिया था जब मोपला विद्रोहियों ने सैंकड़ों हिंदुओं की नृशंस हत्या कर दी थी। उस नरसंहार के बाद मालाबार की हिंदू महिलाओं ने भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड रीडिंग की पत्नी को याचिका भेजकर जीवन और सम्मान की रक्षा की प्रार्थना की थी।[29] किंतु उन दिनों सांप्रदायिक एकता के नाम पर उस बर्बर अपराध पर पर्दा डाल दिया गया था। वर्ष 1924 में दिल्ली, गुलबर्गा, नागपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, जबलपुर, भागलपुर, काणोद, कोहाट, लाहौर और शाहजहाँपुर सहित देश में अनेक स्थानों पर सांप्रदायिक दंगे हुए। शाहजहाँपुर में दंगे हुए तो अशफाक उल्ला और रामप्रसाद बिस्मिल ने मिलकर नफरत की उस आग को बुझाने का प्रयास किया था।

24 सितंबर 1924 को इंडियन न्यूज एजेंसी द्वारा भेजे गए एक टेलीग्राम से पता चलता है कि शाहजहांपुर जिले के गाँव जलालाबाद में पीपल की एक टहनी के लिए हिंदू और मुसलमानों के बीच झगड़े से इन दंगों की शुरुआत हुई। उस दिन एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई थी। बाद में वह आग शाहजहाँपुर तक फैल गई। तत्कालीन वायसराय द्वारा 26 सितंबर 1924 को लंदन में सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया को भेजे तार के अनुसार दंगों में तब तक 6 लोगों की मृत्यु हो चुकी थी और 104 घायल थे।[30]

इन दंगों ने अशफाक उल्ला को अत्यंत दुखी और निराश किया था। वे धार्मिक कट्टरता से पूरी तरह मुक्त थे। उनके विचार में राष्ट्र सेवा से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं था। 19 दिसंबर, 1927 की प्रातः फैजाबाद जेल में उनको फाँसी दी गई। उसी दिन यानी 19 दिसंबर 1927 को उन्होंने भारत के लोगों के नाम एक अनमोल लेख लिखा। वह

24 सितंबर 1924 को इंडियन न्यूज एजेंसी द्वारा भेजे गए एक टेलीग्राम से पता चलता है कि शाहजहांपुर जिले के गाँव जलालाबाद में पीपल की एक टहनी के लिए हिंदू और मुसलमानों के बीच झगड़े से इन दंगों की शुरुआत हुई। उस दिन एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई थी। बाद में वह आग शाहजहाँपुर तक फैल गई। तत्कालीन वायसराय द्वारा 26 सितंबर 1924 को लंदन में सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया को भेजे तार के अनुसार दंगों में तब तक 6 लोगों की मृत्यु हो चुकी थी और 104 घायल थे

लेख 6 पन्नों में छपा मिलता है। स्वाभाविक है कि इतना बड़ा लेख कुछ मिनटों में तो लिखा नहीं जा सकता। संभव है, पिछली शाम को लिखने बैठे हों और प्रातः तक लिख गए हों। उस लेख का शीर्षक है - "बिरादराने वतन के नाम कब्र के किनारे से पैगाम" यानी अपने देशवासियों को अंतिम संदेश। इस लेख में सांप्रदायिक वैमनस्य के विरुद्ध उनकी पीड़ा बार-बार उभर कर आती है। शायद ही किसी ने इतने स्पष्ट शब्दों में धार्मिक कट्टरता पर प्रहार किया होगा। कुछ उदाहरण देखिए[31]:

1. कोई तबलीग (इस्लाम का प्रचार-प्रसार) का दिलदादा है, तो कोई शुद्धि पर मर-मिटने को बाइसे-निजात (मोक्ष का साधन) समझ रहा है। मुझे तो रह-रहकर इन दिमागों और अक्लों पर तरस आ रहा है जो कि बेहतरीन दिमाग हैं और माहरीने-सियासत (राजनीतिक ज्ञानी) हैं।
2. मैं मर रहा हूँ और वतन पर मर रहा हूँ। मेरा फर्ज है कि हर नेक-ओ-बद (अच्छी और बुरी) बात भाइयों तक पहुँचा दूँ। मानना न मानना उनका काम है। मुल्क के बड़े-बड़े लोग इससे बचे हुए नहीं हैं। पस (इसलिए) आवाम (जनता) को आँखें खोलकर इत्तिबा (मानना) करना चाहिए। भाइयो! तुम्हारी खाना जंगी, तुम्हारी आपस में फूट, तुम दोनों में किसी के भी सूदमंद (लाभकारी) साबित न होगी। यह गैर मुमकिन है कि 7 करोड़ मुसलमान शुद्ध हो जाएँ और यह भी महमल (निरर्थक) सी बात है कि 22 करोड़ हिंदू मुसलमान बना लिए जाएँ।
3. ऐ खुदावंद-ए-कुद्दूस (पवित्रतम ईश्वर), क्या कोई ऐसा सवेरा नहीं आएगा कि जिस सुबह को तेरा आफताब आजाद हिंदुस्तान पर चमके? और फिजा-ए-हिन्द आजादी के नारों से गूँज उठे? कांग्रेस वाले हों कि स्वराजिस्ट, तब्लीग वाले हों कि शुद्धि वाले, कम्यूनिस्ट हों कि रिवोलूशनरी, अकाली हों कि बंगाली। मेरा पयाम (संदेश) हर फरजंदे-वतन (भारती-पुत्रों) तक पहुँचे। मैं हर शख्स को उसकी इज्जत व मजहब का वास्ता देता हूँ। अगर वह मजहब का कायल नहीं तो उसके जमीर को और जिसको भी वह मानता हो, अपील करता हूँ कि हम काकोरी केस के मर जाने वाले नौजवानों पर तरस खाओ और फिर हिंदुस्तान को सन 20 व 21 वाला हिंदुस्तान बना दो।
4. तब्लीग व शुद्धि वालो खुदारा आँखें खोलो, कहाँ थे और कहाँ पहुँच गए, अपनी-अपनी शान खत्म करो, सोचो तो मजहब में जबरदस्ती इख्तिलाफे (विरोध) राय पर जंग, एक काम नामुकम्मल (अधूरा) छोड़कर दूसरी तरफ रुजू (मुड़ गए) हो गए।
5. तुम खुदा की इबादत पुरसुकून (शांतिपूर्वक) तरीके पर करो। तुम ईश्वर का ध्यान खामोशी से करो और दोनों मिलकर इस सफेद भूत को मंत्र से जंत्र से उतार भगाओ।
6. आपस में मिलजुल कर रहो और मुत्तहिद (एक होना) हो जाओ, नहीं तो सारे हिंदुस्तान की बदबख्ती (दुर्भाग्य) का बार तुम्हारी गर्दन पर है और गुलामी का बाइस (कारण) तुम हो।

अशफाक उल्ला की इन बातों में वह दर्द और पूर्वाभास स्पष्ट था जो इस लेख के 20

साल बाद भारत के बँटवारे के रूप में सामने आया। दुर्भाग्य की बात तो यह है कि द्विराष्ट्र के आधारहीन सिद्धांत की दुहाई देकर जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग मुसलमानों को गुमराह करने में कामयाब रही और अशफाक उल्ला का दिव्य संदेश बँटवारे के शोरगुल में दब कर रह गया। वंदेमातरम पर भी विवाद खड़ा कर दिया गया और कट्टरवादी सोच मुसलमानों से राष्ट्रीय गीत न गाने के लिए निरंतर जोर देती रहती है। वंदेमातरम गीत बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय के जिस उपन्यास 'आनंदमठ' का हिस्सा है, अशफाक लिखते हैं कि क्रांतिकारी गतिविधियों की ओर अग्रसर होने के समय बनारसीलाल ने वह उपन्यास हिंदी में उन्हें सुनाया था। अशफाक को न आनंदमठ पर आपत्ति थी और न ही वंदेमातरम पर।

कट्टरवादी कहते हैं कि मुसलमान अल्लाह के अतिरिक्त किसी और की वंदना नहीं कर सकते, माँ की भी नहीं और मातृभूमि की भी नहीं। लेकिन, अशफाक उल्ला के लिए राष्ट्र वंदना सबसे बड़ा धर्म था। वे सभी संकीर्णताओं से मुक्त थे। साथी क्रांतिकारी शचींद्र नाथ बख्शी की बड़ी बहन को फाँसी से 3 दिन पहले लिखा उनका पत्र इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। पत्र अंग्रेजी में लिखा गया था जिसका हिंदी अनुवाद नीचे दिया जा रहा है[32]:

विदाई

काल कोठरी
फैजाबाद जेल
16-12-1927

प्रिय दीदी

मैं दूसरी दुनिया में जा रहा हूँ, जहाँ न दुनियादारी की तकलीफें हैं और न जहाँ बेहतर जिंदगी के लिए और संघर्ष करना पड़ेगा, जहाँ न मौत होगी, न विनाश होगा। मैं मरने नहीं जा रहा हूँ, बल्कि हमेशा के लिए जीने जा रहा हूँ। कामरेड बख्शी की रिहाई के बाद मेरा आदर सहित उन्हें प्यार कहिएगा और कहिएगा कि मैंने अंतिम साँस दृढ़ मन व प्रसन्न हृदय से ली। आखिरी दिन सोमवार का है, अगर आपको मौका मिले तो एक अंतिम भेंट कर सकती हैं। अगर परिस्थितियाँ संभव न हों तो मैं आप सबसे हमेशा के लिए विदा लेता हूँ। मेरा अंतिम बंदे स्वीकार करें और मुझे मौत को गले लगाने दें। आपको बाद में मालूम होगा कि मैंने कैसे मौत को गले लगाया।

ईश्वर आपके साथ हो अपने आशीर्वाद के साथ। बाबा को मेरा बंदे चरण और सावित्री, गौर, कनु और अन्य बच्चों को प्यार और नेपाल को बंदे। सभी बड़ों को बंदे चरण और छोटों को प्यार। अपनी जिंदगी में आप सभी को एक बार और देखने की ख्वाहिश है, यदि संभव हो तो आप आएँ। ईश्वर को याद करें और मेरे बारे में सोच कर दुखी न हों। बख्शी को मेरे बारे में बताइएगा। मैं आपको अपनी बहन की तरह सम्मान करता हूँ और आप मुझे न भूलिएगा। प्रसन्न रहें। मैं एक वीर की तरह मर रहा हूँ।

सभी को बंदे चरण।

आपका
अशफाक उल्ला खाँ वारसी

अशफाक साथी क्रांतिकारी शचींद्रनाथ बख्शी के पिता व अन्य सभी बड़ों को चरण वंदना लिखते हैं। यही भारतीय संस्कृति है। इसको मजहब के चश्मे से देखना लोगों को फिर से बाँटने, सांप्रदायिक विद्वेष फैलाने के अतिरिक्त कुछ और नहीं है। अशफाक उल्ला की अप्रकाशित जेल डायरी के पन्नों से भी भारत माता के प्रति उनके समर्पण का पता चलता है। नीचे कुछ उदाहरण दिए गए हैं:

1. यहाँ महान भगवान बुद्ध उठे जिन्होंने निर्वाण के द्वार खोल दिए, आधा विश्व सम्मान भरे प्यार के साथ उनकी आराध ना करते हुए उनको नमन करता है।
2. ऐ मेरी देवी! ऐ मेरी जीवात्मा! ऐ मेरी जन्नत! ऐ मेरी मातृभूमि! जब तेरे 30 करोड़ बच्चे एक साथ मिलकर तेरी वंदना करेंगे तो कोई लज्जा, कोई पीड़ा, कोई कष्ट, कोई दुःख नहीं होगा।
3. मेरे भाई और मित्र मेरे मेरे बाद रोएंगे, लेकिन मैं अभी रो रहा हूँ मातृभूमि के प्रति उनकी उदासीनता और बेवफाई देखकर।
4. बच्चों मत रोना, बुजुर्गों मत रोना। मैं नहीं मरूँगा। मैं अमर हूँ, मैं अमर हूँ।

अमरत्व इस्लाम का नहीं, बल्कि सनातन धर्म का सिद्धांत है। अशफाक जब लिखते हैं - 'मैं अमर हूँ' तो वे काफिर नहीं हो जाते। वे मातृभूमि के लिए बलिदान हो जाने की महानता की बात कर रहे थे। अशफाक उल्ला के विचार, उनके आदर्श आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने उनके समय में थे।

साथी क्रांतिकारी शचींद्र नाथ बख्शी लिखते हैं - "नियमित रूप से नमाज पढ़ने पर भी वे कट्टर कतई नहीं थे। धर्म को वे कभी रास्ते का रोड़ा बनते नहीं देख सकते थे, बल्कि ऐसा होने पर वे धर्म को रोड़े की तरह ठुकरा देना ठीक समझते थे। वे मुल्क की आजादी के सवाल को मजहबी मतभेदों से कहीं ऊँची चीज मानते थे। पहले वे देश को स्वतंत्र देखना चाहते थे। इसी से अशफाक उल्ला की धर्म के संबंध में उदारता का तथा उनके हृदय में हिलोरें लेती हुई देशभक्ति का परिचय मिल जाता है।[33]

अशफाक उल्ला केवल वीर ही नहीं बल्कि बड़े चिंतनशील तथा दूरदर्शी क्रांतिकारी थे। जब रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में क्रांतिकारियों ने रेलगाड़ी रोक कर सरकारी खजाना लूटने की योजना बनाई तो अशफाक उल्ला ने इसका विरोध किया था। उनका कहना था कि अभी हमारा दल इतना मजबूत नहीं है कि हम ब्रिटिश साम्राज्य को खुली चुनौती दे सकें। अभी हम इस हालत में नहीं हैं कि सरकार से सीधी लड़ाई छेड़कर दल को कायम रख सकें। लेकिन सब जोश के मारे फड़क रहे थे और अशफाक उल्ला की बात नक्कारखाने में तूती की आवाज बनकर रह गई।

9 अगस्त, 1925 को ट्रेन डकैती का निश्चय किया गया था। दस आदमी जब काकोरी स्टेशन पहुँचे उस समय भी अशफाक उल्ला कहते रहे कि रामप्रसाद बात मान जाओ, अब भी लौट चलो। पर उनका कहना अरण्यरोदन ही रहा। शचींद्र नाथ बख्शी लिखते हैं - "*रामप्रसाद बिस्मिल ने मुझे बुलाकर कहा कि अशफाक को समझाओ और उसे बताओ कि लोग उसके विरोध के कारण उसे क्या-क्या कह रहे हैं। मैंने अशफाक को बताया कि ऐन मौके पर*

पहुँचकर तुम जो विरोध कर रहे हो उसकी प्रतिक्रिया साथियों पर बड़ा खराब असर डालेगी, बल्कि वे तो तुम्हें डरपोक भी कहने लगे हैं। दरअसल, हमारे कई साथी कह रहे थे कि अशफाक डर गया है। पंडित रामप्रसाद बिस्मिल ने भी अशफाक उल्ला को बताया कि सभी यही सोच रहे हैं कि तुम डर गए हो। पर अशफाक की एक ही रट थी - लौट चलो, यह काम नहीं होना चाहिए।"[34]

लेकिन जब उनकी सलाह नहीं मानी गई तो अशफाक ने आगे बढ़कर उस एक्शन में भाग लिया। परिणाम यह हुआ कि जिस डाके में सिर्फ 4553 रुपए, 3 आना और 6 पाई हासिल हुए थे[35] उससे जुड़े मुकदमे में रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला खाँ, राजेंद्र लाहिड़ी और रोशन सिंह को फाँसी हुई। इनके अतिरिक्त 16 और क्रांतिकारियों की लंबी अवधि की सजाएँ हुई। संगठन तहस-नहस हो गया। अशफाक उल्ला की आशंका सही साबित हुई थी। उनके विवेक की प्रशंसा करते हुए आजीवन कारावास की सजा पाने वाले क्रांतिकारी शचींद्र नाथ बख्शी लिखते हैं - "*यह मानना पड़ेगा कि वे बहुत दूर की सोच रहे थे।*"[36] मन्मथनाथ गुप्त, जिन्हें उस मुकदमे में 14 वर्ष की सजा हुई थी, अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास' में लिखते हैं - "*इतिहास ने सिद्ध कर दिया है कि अशफाक सही थे और हम सब गलती पर थे। यह बात तो निश्चित है कि यदि हम इस कार्य को न करते तो इतनी जल्दी हमारे दल के पाँव न उखड़ जाते।*"[37]

जब फाँसी की सजा हो गई तो सरकार से दया याचना दाखिल करने की बात आई तो अशफाक उल्ला दया याचना के लिए तैयार नहीं थे। रामप्रसाद बिस्मिल लिखते हैं - "श्री अशफाक उल्ला खाँ तो अंग्रेजी सरकार से दया-प्रार्थना करने पर राजी ही न थे। उनका तो अटल विश्वास यही था कि खुदाबंद करीम के अलावा किसी दूसरे से दया-प्रार्थना न करनी चाहिए; परंतु मेरे विशेष आग्रह से ही उन्होंने सरकार से दया-प्रार्थना की थी। इसका दोषी मैं ही हूँ, जो मैंने अपने प्रेम के पवित्र अधिकारों का उपयोग करके श्री अशफाक उल्ला खाँ को दृढ़ निश्चय से विचलित किया। मैंने एक पत्र द्वारा अपनी भूल स्वीकार करते हुए भ्रातृ-द्वितीया के अवसर पर गोरखपुर जेल से श्री अशफाक को पत्र लिखकर क्षमा-प्रार्थना की थी।"[38]

अशफाक का अर्थ होता है करुणा। अशफाक उल्ला सच्चे क्रांतिकारी थे और उनका आचरण सदैव उनके नाम के अनुरूप रहा था। उन्हें फाँसी की सजा हुई थी परंतु न तो उन्होंने किसी की हत्या की थी।

8 सितंबर, 1926 को दिल्ली में अशफाक उल्ला गिरफ्तार हुए थे। गिरफ्तार करके उन्हें लखनऊ लाया गया जहाँ सीआईडी के डिप्टी सुपरिंटेंडेंट खाँ बहादुर तसद्दुक हुसैन ने अशफाक को धर्म का वास्ता देकर कहा - "*देखो अशफाक, तुम मुसलमान हो, हम भी मुसलमान हैं हमें तुम्हारी गिरफ्तारी से बहुत रंज है। रामप्रसाद वगैरह हिंदू हैं। इनका उद्देश्य हिंदू सल्तनत कायम करना है। तुम पढ़े-लिखे खानदानी मुसलमान हो। तुम कैसे इन काफिरों के चक्कर में आए?*"[39] यह सुनते ही अशफाक की आँखें लाल हो गई और झल्लाकर उन्होंने कहा - "*खबरदार, ऐसी बात फिर कभी न कहिएगा। अव्वल तो पंडित जी (रामप्रसाद बिस्मिल) वगैरह सच्चे हिंदुस्तानी हैं, उन्हें हिंदू सल्तनत, सिख राज्य या किसी भी फिर्कावाराना सल्तनत से सख्त नफरत है, और आप जैसा कहते हैं, अगर वह सत्य भी हो तो मैं अंग्रेजों के राज्य से हिंदू राज्य ज्यादा पसंद करूँगा।*"[40]

इस घटना से यह पुष्टि होती है कि अंग्रेज धर्म-जाति के नाम पर भारतीयों में फूट डालकर अपना उल्लू सीधा कर रहे थे और बड़ी संख्या में भारतीय इस जाल में फँस भी रहे थे। 1857 के प्रथम स्वातंत्र्य समर के बाद अंग्रेजों ने भारतीयों को शस्त्र विहीन तो कर ही दिया था साथ ही सांप्रदायिक आधार पर भी उन्हें बाँट दिया था। मुसलमानों को यह भय निरंतर दिखाया जा रहा था कि यदि भारत से अंग्रेज गए तो इस बार तलवार से नहीं वोट से सरकार बनेगी और हिंदू बहुसंख्या वाले देश में मुसलमानों को गुलामी ही करनी पड़ेगी। इसका असर यह हुआ कि यदि वर्ष 1920 के खिलाफत आंदोलन को छोड़ दें तो मुसलमानों ने संगठित होकर अंग्रेजों के विरुद्ध किसी आंदोलन में भाग नहीं लिया था और खिलाफत आंदोलन भी, जैसा कि ऊपर बताया गया है, भारत की स्वतंत्रता के लिए नहीं बल्कि तुर्की के खलीफा के समर्थन में था।

चाहे बंगाल में क्रांतिकारी संगठन अनुशीलन समिति या जुगांतर ग्रुप की बात हो या वर्ष 1930 में सूर्यसेन के नेतृत्व में चटगाँव की घटनाएँ हों, अधिकांश नाम हिंदू ही मिलते हैं। इसी तरह महाराष्ट्र में अभिनव भारत की बात हो या पंजाब में गदर की गूँज; या मैनपुरी षड्यंत्र की बात करें या फिर हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन और बाद में हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन या नौजवान भारत सभा के सदस्य हों, मुसलमान बड़ी मुश्किल से दिखाई देते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे अंग्रेजपरस्त थे बल्कि दुर्भाग्य से वे अंग्रेजों के उस प्रोपेगेंडा का शिकार हो गए थे कि अंग्रेज गए तो हिंदू राज आएगा। इसलिए मुसलमान आजादी के आंदोलन से दूर होते चले गए। अशफाक उल्ला को इस बात का बहुत कष्ट था। उन्होंने कहा था - "*सात करोड़ मुसलमान भारतवासियों में मैं सबसे पहला मुसलमान हूँ जो भारत की स्वतंत्रता के लिए फाँसी चढ़ रहा हूँ, मैं मन ही मन*

जब फाँसी की सजा हो गई तो सरकार से दया याचना दाखिल करने की बात आई तो अशफाक उल्ला दया याचना के लिए तैयार नहीं थे। रामप्रसाद बिस्मिल लिखते हैं - श्री अशफाक उल्ला खाँ तो अंग्रेजी सरकार से दया-प्रार्थना करने पर राजी ही न थे। उनका तो अटल विश्वास यही था कि खुदाबंद करीम के अलावा किसी दूसरे से दया-प्रार्थना न करनी चाहिए; परंतु मेरे विशेष आग्रह से ही उन्होंने सरकार से दया-प्रार्थना की थी। इसका दोषी मैं ही हूँ, जो मैंने अपने प्रेम के पवित्र अधिकारों का उपयोग करके श्री अशफाक उल्ला खाँ को दृढ़ निश्चय से विचलित किया

अभिमान का अनुभव कर रहा हूँ।"[41]

ऐसा भी माना जाता है कि अपनी फरारी के दिनों में वे लाहौर भी गए थे जहाँ केदारनाथ सहगल से उनकी भेंट हुई। सहगल ने कहा - "*जेल में मैं फ्रंटियर के एक मशहूर लीडर के साथ कैद रहा था और उन्होंने मुझसे कहा था कि जब कभी किसी पोलिटिकल कार्यकर्ता को खुफिया तौर पर सरहद पार कराना हो तो उसका इंतजाम हम कर सकते हैं। आप चाहें तो हम हिफाजत से आपको अंग्रेजी राज्य की सीमा से बाहर भेज सकते हैं।*" अशफाक उल्ला ने उत्तर दिया - "*मैं हिंदुस्तान से भागना नहीं चाहता। भई! किसी मुसलमान को भी तो फाँसी चढ़ने दो।*"[42] ये बात और है कि अशफाक उल्ला के विरुद्ध चले मुकदमे में उनके कुछ तथाकथित पत्रों को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया था जिनके आधार पर मुकदमे के फैसले में यह निष्कर्ष निकाला गया था कि वे बचकर विदेश चले जाने का प्रयास कर रहे थे।[43] इस बात की पुष्टि शचींद्र नाथ बख्शी भी करते हैं कि अशफाक उल्ला ने विदेश चले जाने का निश्चय किया था। फरारी के दिनों में उन्होंने 8-10 महीने डाल्टनगंज में एक एग्जीक्यूटिव इंजीनियर के यहाँ हिंदू बनकर नौकरी की। जब उससे ऊब गए तो दिल्ली पहुँचे। वहाँ इंजीनियरिंग पढ़ने के बहाने से विदेश जाने के लिए वे पासपोर्ट प्राप्त करने की कोशिश करने लगे।[44]

ऐसा भी माना जाता है कि अपनी फरारी के दिनों में वे लाहौर भी गए थे जहाँ केदारनाथ सहगल से उनकी भेंट हुई। सहगल ने कहा - जेल में मैं फ्रंटियर के एक मशहूर लीडर के साथ कैद रहा था और उन्होंने मुझसे कहा था कि जब कभी किसी पोलिटिकल कार्यकर्ता को खुफिया तौर पर सरहद पार कराना हो तो उसका इंतजाम हम कर सकते हैं। आप चाहें तो हम हिफाजत से आपको अंग्रेजी राज्य की सीमा से बाहर भेज सकते हैं। अशफाक उल्ला ने उत्तर दिया - मैं हिंदुस्तान से भागना नहीं चाहता

मुकदमे का फैसला आने से एक रात पहले उन्होंने जो गीत लिखा उसकी कुछ पंक्तियाँ थीं[45] -

हे मातृभूमि तेरी सेवा किया करूँगा,
फाँसी मिले मुझे या हो जन्म कैद मेरी,
बड़ी बजा-बजाकर तेरा भजन किया करूँगा।

अशफाक उल्ला ने मातृभूमि की सेवा को सबसे बड़ा धर्म माना था। आज उनके संदेश को घर-घर ले जाने की आवश्यकता है। वंदेमातरम का विरोध करने वालों को यह दर्पण दिखाना अत्यंत महत्त्वपूर्ण होगा।

संदर्भ

1. शहीद-ए-वतन अशफाक उल्ला खाँ, एम. आई. राजस्वी, पृ. 135
2. वही, पृ. 148
3. वही, पृ. 149
4. वही, पृ. 133
5. बलिदानी अशफाक उल्ला की जेल डायरी के पन्नों से
6. गृह विभाग, राजनैतिक फाइल सं. 53/1927-केडब्ल्यू; विशेष न्यायाधीश का निर्णय, पृ. 122
7. अमर शहीद अशफाक उल्ला खाँ, संपादक बनारसी दास चतुर्वेदी, पृष्ठ 53
8. वही, पृ. 56
9. वही, पृ. 57
10. वही, पृ. 86
11. वही, पृ. 56-57
12. आत्मकथा रामप्रसाद बिस्मिल, संपादक बनारसीदास चतुर्वेदी, पृ. 86
13. वही, पृ. 86-87
14. वही, पृ. 42
15. अमर शहीद अशफाक उल्ला खाँ, संपादक बनारसी दास चतुर्वेदी, पृष्ठ 72
16. वही, पृ. 55
17. वही, पृ. 55
18. वही, पृ. 63
19. गृह विभाग, राजनैतिक फाइल सं. 53/1927-केडब्ल्यू; विशेष न्यायाधीश का निर्णय, पृ. 122
20. अमर शहीद अशफाक उल्ला खाँ, संपादक बनारसी दास चतुर्वेदी, पृ. 61
21. वही, पृ. 62
22. वही, पृ. 65
23. वही, पृ. 66
24. वही, पृ. 69
25. 'राष्ट्र वंदना' यूट्यूब चौनल पर अशफाक उल्ला के पौत्र और उन्हीं के हमनाम अशफाक उल्ला का साक्षात्कार
26. आत्मकथा रामप्रसाद बिस्मिल, संपादक बनारसीदास चतुर्वेदी, पृ. 87
27. वही, पृ. 87
28. [http://www.gandhiashramsevagram.org/gandhi-literature/mahatma-gandhi-collected-works-volume-27.pdf; pp. 334-339
29. गांधी ऐंड एनार्की, सी. शंकरन नायर, पृ. 139-142
30. abhilekh-patal.in, Home Department, Political, File No. 249/IX - 1924
31. अमर शहीद अशफाक उल्ला खाँ, संपादक बनारसी दास चतुर्वेदी, पृ. 113-115
32. वतन पर मरने वालों का, शचींद्र नाथ बख्शी, पृ. 70
33. वही, पृ. 61
34. वही, पृ. 57
35. गृह विभाग, राजनैतिक फाइल सं. 53/1927-केडब्ल्यू; अपीलों पर मुख्य न्यायालय का निर्णय, पृ. 5
36. वतन पर मरने वालों का, शचींद्र नाथ बख्शी, पृ. 57
37. भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास, मन्मथनाथ गुप्त, पृ. 242
38. आत्मकथा रामप्रसाद बिस्मिल, संपादक बनारसीदास चतुर्वेदी, पृ. 139
39. अमर शहीद अशफाक उल्ला खाँ, संपादक बनारसी दास चतुर्वेदी, पृ. 25
40. वही, पृ. 25
41. वही, पृ. 29
42. वही, पृ. 22
43. गृह विभाग, राजनैतिक फाइल सं. 53/1927-केडब्ल्यू; विशेष न्यायाधीश का निर्णय, पृ. 44-45
44. वतन पर मरने वालों का, शचींद्र नाथ बख्शी, पृ. 58-59
45. वही, पृ. 62

इंटरव्यू

धार्मिक कट्टरता के घोर विरोधी थे अशफाक

अमर बलिदानी अशफाक उल्ला खाँ चार भाइयों में सबसे छोटे थे। चारों में दूसरे नंबर पर थे रियासत उल्ला खाँ। अशफाक उल्ला खाँ के मुकदमे के समय और उसके बाद रियासत उल्ला ने अकथनीय कष्ट उठाए थे। रियासत उल्ला के पौत्र का नाम भी अशफाक उल्ला खाँ है। आज के अशफाक उल्ला भी मातृभूमि प्रेम की अपने बलिदानी दादा अशफाक उल्ला की विरासत को आगे बढ़ा रहे हैं। पिछले दिनों शाहजहाँपुर में अशफाक उल्ला से प्रदीप देसवाल की बातचीत

प्रदीपः अशफाक जी, कुछ अपने पूर्वजों के बारे में बताइए, उनका शाहजहाँपुर से कितना पुराना संबंध है?

अशफाकः हमारे पूर्वज पेशावर के पास के रहने वाले पठान थे। शाहजहाँ के जमाने में वे यहाँ आकर बसे थे। अशफाक उल्ला के दादा का खानदान कदनखेल के नाम से जाना जाता था और उनके नाना का खानदान हाफिजखेल के नाम से जाना जाता था। यहाँ आकर जमीन-जायदाद खरीदकर वे लोग यहाँ बस गए थे।

प्रदीपः अशफाक उल्ला के माता-पिता के बारे में कुछ बताइए?

अशफाकः अशफाक उल्ला के पिता नाम तथा शफीक उल्ला खाँ। वे पुलिस सब इंस्पेक्टर थे। अशफाक उल्ला के जन्म से पहले ही पुलिस की नौकरी से सेवानिवृति ले चुके थे। वे बड़े स्वाभिमानी व्यक्ति थे। अशफाक उल्ला के बचपन में ही उनके पिता की मृत्यु हो गई थी। अशफाक उल्ला की माँ का नाम मजहर उल निसाँ बेगम था। वे एक पढ़ी-लिखी, बुद्धिमान और बड़े ही प्रभावी व्यक्तित्व वाली महिला थीं। उनके पलँग के एक ओर पुस्तकें रखी रहती थीं। अखबार भी नियमित रूप से पढ़ती थीं। बड़े डील की महिला थीं, गरीबों की बेटियों के विवाह में दिल खोलकर मदद करती थीं। अशफाक उल्ला के नाना मुहम्मद अबुल हसन खाँ कोर्ट में इंस्पेक्टर पुलिस थे और 1857 के स्वतंत्रता के प्रथम संघर्ष के समय उनके परनाना सब-जज थे।

प्रदीपः अशफाक उल्ला कितने भाई-बहन थे?

अशफाकः अशफाक उल्ला कुल चार भाई और एक बहन थे। सबसे बड़े थे शफी उल्ला खाँ, मँझले थे रियासत उल्ला खाँ, तीसरे शहंशाह खाँ और सबसे छोटे थे अशफाक उल्ला। एक बहन भी थीं जिसका नाम था परवरिश बानो। शहंशाह खाँ भोपाल रियासत में कलेक्टर के चीफ रीडर थे।

प्रदीपः अशफाक उल्ला तो अविवाहित थे, उनके भाइयों में से आपके दादा कौन थे?

अशफाकः मेरे दादा थे रियासत उल्ला खाँ और पिता इश्तियाक उल्ला खाँ।

प्रदीपः सुना है अशफाक उल्ला अपनी माता से अत्यंत प्यार करते थे। माँ के व्यक्तित्व का अशफाक उल्ला पर किस तरह का प्रभाव था?

अशफाकः चूँकि अशफाक उल्ला अपने भाई-बहनों में सबसे छोटे थे, इसलिए माँ के बड़े लाडले थे। कहते हैं कि जब छोटे थे तो अपनी माँ से इतना प्यार करते थे कि रात में सोते-सोते उठ जाते और माँ का चेहरा देखते रहते। बड़े होने के बाद भी माँ के साथ उनके असीम प्रेम के प्रमाण हैं जेल से माँ को लिखे उनके अनेक पत्र।

प्रदीपः अशफाक उल्ला का बचपन कैसा था, पढ़ाई-लिखाई में कैसे थे, शरारतें करते थे या नहीं?

अशफाकः एक बात तो यह कि अपने भाई-बहनों में सबसे छोटा होने के कारण सबके बड़े लाडले थे। सभी बच्चों की तरह थोड़ी-बहुत शरारतें भी करते ही थे। देखिए, अपने बचपन के बारे में उन्होंने स्वयं बड़े विस्तार से लिखा है। वे प्रारंभ से ही अपनी उम्र के अन्य लड़कों से ज्यादा लंबे-तगड़े थे। आपस में लड़ पड़ते तो पिटाई कर देते थे। बार-बार घर पर शिकायत पहुँचती, तब निर्णय लिया गया कि इन्हें फुर्सत ही न दी जाए। अभी बच्चे ही थे कि एक मौलवी साहब, जो बड़े भाइयों को पढ़ाते थे, अशफाक उल्ला को भी उनके सुपुर्द कर दिया गया। हमारे यहाँ एक रस्म होती है 'बिस्मिल्लाह।' जब कोई बच्चा विधिवत पढ़ाई शुरू करता है तो पहले यह रस्म होती है, लेकिन अशफाक उल्ला स्वयं लिखते हैं -'बिस्मिल्लाह होने से पेश्तर ही मैं बाकायदा कायदा वगैरह खत्म कर चुका था।'

प्रदीपः वे शाहजहाँपुर के मिशन स्कूल में भी पढ़े थे?

अशफाकः जी हाँ, मिशन स्कूल उन दिनों शाहजहाँपुर का सबसे प्रतिष्ठित स्कूल हुआ करता था। मौलवी साहब के पास अशफाक ने उर्दू और फारसी सीखी थी। इसके बाद वे मिशन स्कूल में दाखिल हुए। मिशन स्कूल में ही रामप्रसाद बिस्मिल भी पढ़ते थे, पर वे इनसे बड़े थे।

प्रदीपः चूँकि पारिवारिक पृष्ठभूमि ऐसी थी जिसमें उनके ददिहाल और ननिहाल वाले सरकारी नौकरियों में रहे थे, तो जब परिवार

को पता कि अशफाक क्रांति के पथ पर चल पड़े हैं तब घर वालों की कैसी प्रतिक्रिया थी?

अशफाक: स्वाभाविक सी बात है कि जब परिवार वालों को इसकी जानकारी हुई होगी तो सब हैरान हुए होंगे क्योंकि वहाँ तो तब तक सरकारी नौकरियों में रहे थे। हालाँकि, मेरे दादा और अशफाक उल्ला खाँ के बड़े भाई रियासत उल्ला खाँ रामप्रसाद बिस्मिल के सहपाठी और मित्र थे लेकिन रामप्रसाद बिस्मिल की क्रांतिकारी गतिविधियों से उनका कोई वास्ता नहीं रहा था। लेकिन ये भी सच है कि परिवार ने अशफाक उल्ला को अकेले नहीं छोड़ दिया था बल्कि उनके मुकदमे को पूरी हिम्मत से लड़ा था।

प्रदीप: रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाक उल्ला खाँ की मित्रता की बहुत बात होती है?

अशफाक: बिलकुल सही बात है, रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाक उल्ला खाँ की दोस्ती अटूट थी। मैनपुरी केस के बाद रामप्रसाद बिस्मिल प्रसिद्ध हो गए थे। अशफाक उल्ला ने उनसे संपर्क किया और आग्रह किया कि वे भी भारत की स्वतंत्रता के लिए क्रांतिकारी दल में शामिल होना चाहते हैं पर शुरू में रामप्रसाद बिस्मिल उन्हें टाल गए। बिस्मिल के लिए यह विश्वास करना कठिन था कि एक ऐसे परिवार का लड़का, जिसके परिवार में अधिकतर लोग सरकारी नौकरियों में रहे थे, वह अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांति के दुर्गम मार्ग पर चल सकेगा। लेकिन, एक बार रामप्रसाद बिस्मिल को उन पर भरोसा हो गया तो फिर ऐसी दोस्ती हुई कि फाँसी तक साथ बना रहा। मुकदमे के फैसले में जज ने लिखा था कि अशफाक उल्ला रामप्रसाद बिस्मिल के दाएँ हाथ थे। और, रामप्रसाद बिस्मिल ने भी अपनी आत्मकथा में लिखा है कि तुमने संसार में मेरा मुख उज्ज्वल कर दिया। बिस्मिल पक्के आर्यसमाजी थे और मुसलमानों की शुद्धि करते थे लेकिन इन दोनों की दोस्ती के बीच धर्मभेद कभी नहीं आया। बिस्मिल आर्य समाज मंदिर में रहते थे, वहाँ उनसे मिलने अशफाक उल्ला जाते थे और जिस जगह बिस्मिल यज्ञ करते थे उसके पास ही अशफाक नमाज पढ़ते थे।

प्रदीप: बिस्मिल अपनी आत्मकथा में एक और घटना का जिक्र भी करते हैं जिसमें बुखार के समय अशफाक 'राम' 'राम' पुकार रहे थे, कुछ उसके बारे में बताइए?

अशफाक: हाँ, यूँ हुआ था कि एक बार अशफाक उल्ला को तेज बुखार हो गया। बुखार दिमाग तक चढ़ गया था। पर उस हालत में भी वे अपने सबसे प्यारे मित्र रामप्रसाद बिस्मिल को याद कर रहे थे और 'राम' 'राम' बड़बड़ा रहे थे। वे बिस्मिल को राम कहकर ही पुकारते थे पर इसकी जानकारी घर वालों को नहीं थी। सबने सोचा यह आर्य समाज में जाने का प्रभाव है। सब परेशान थे, चिंतित थे। तब किसी को इस बात का ख्याल आया कि हो न हो वे अपने मित्र रामप्रसाद बिस्मिल को पुकार रहे हों। बिस्मिल तक इस बात की खबर पहुँचाई गई। जब वे पहुँचे तो उनका हाथ पकड़कर अशफाक उल्ला ने कहा - 'तुम आ गए राम?' यह देखकर सब बहुत खुश हुए।

प्रदीप: वर्ष 1924 में शाहजहाँपुर में सांप्रदायिक दंगे भी खूब हुए थे, उस समय रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाक उल्ला की क्या भूमिका रही?

अशफाक: देखिए, शाहजहाँपुर का इतिहास बहुत अच्छा रहा है। हिंदू और मुसलमानों में आपसी सौहार्द बहुत मजबूत रहा है। बँटवारे के समय भी शाहजहाँपुर में कोई झगड़ा नहीं हुआ था। वर्ष 1924 में जरूर दंगे हुए थे। उस दौरान बिस्मिल और अशफाक उल्ला दोनों ने उस आग को बुझाने के लिए दिन-रात एक कर दिया था। एक बार तो ऐसा हुआ कि कुछ दंगाई मुसलमानों ने आर्य समाज मंदिर को घेर लिया। अशफाक उल्ला दरवाजे पर तन कर खड़े हो गए और बोले कि तुम केवल मेरी लाश के ऊपर ही अंदर जा सकते हो। उन्होंने अपना पिस्तौल निकाल लिया था और आर्य समाज मंदिर की रक्षा के लिए अपनी जान दाँव पर लगाने के लिए तैयार थे।

प्रदीप: काकोरी की घटना के बाद जब पुलिस अशफाक उल्ला को गिरफ्तार नहीं कर पा रही थी तो परिवार को किस-किस तरह यातनाएँ दी गईं?

अशफाक: देखिए, 9 अगस्त 1925 को काकोरी वाली घटना हुई थी। 25-26 सितंबर को रामप्रसाद बिस्मिल सहित अधिकतर क्रांतिकारी पकड़े गए थे। जो बचे थे उनमें प्रमुख थे - अशफाक उल्ला खाँ, शचींद्रनाथ बख्शी और चंद्रशेखर आजाद। पुलिस ने इन्हें पकड़ने के लिए पूरी ताकत लगा दी थी। उसी रात लगभग 4 बजे हमारे घर भी पुलिस पहुँच गई। मेरे दादा रियासत उल्ला जी ने दरवाजा खोला। बड़ी संख्या में पुलिस वाले घर में घुसने लगे। रियासत उल्ला जी ने उन्हें रोकते हुए कहा कि पहले तलाशी का वारंट दिखाएँ। उनके पास सर्च वारंट था। तब दादाजी ने कहा कि घर में महिलाएँ भी हैं, आप ऐसे नहीं जा सकते। पहले मैं भीतर जाकर पर्दा करवा देता हूँ। असल में उस समय अशफाक उल्ला घर पर ही थे। रियासत उल्ला चाहते थे कि अंदर जाकर उन्हें सचेत कर दें। पर पुलिस वालों ने उन्हें अकेले अंदर जाने से रोक दिया। रियासत उल्ला ने वहीं से ऊँची आवाज देकर कहा कि पुलिस आई है पर्दा कर लो। अशफाक उल्ला भी समझ गए। उनके पास मास्को से प्रकाशित होने वाले भारत में प्रबंधित अखबार 'वैनगार्ड' की कई प्रतियाँ भी थीं, उन्हें उठाया और तुरंत छत पर चले गए। हमारे खानदान वालों के कई पैतृक घर एक दूसरे के साथ लगते थे, जहाँ एक घर की छत से दूसरे घर की छत पर जाया जा सकता था। उन छतों से होते हुए अशफाक उल्ला बच

कर निकल गए। पुलिस वाले बहुत निराश हुए। घर में लाइसेंस की बंदूक थी, वे वह ले गए।

25-26 दिसंबर की रात को पुलिस ने फिर घर पर छापा मारा। उस समय मेरे पिताजी इश्तियाक उल्ला खाँ की उम्र लगभग 5 साल थी और बुआ लगभग 4 साल की रही होगी। सर्दी की उस रात, बेरहम पुलिस वालों ने उन बच्चों के लिहाफ, बिस्तर और पलंग भी ले गए। यहाँ तक कि कपड़े, चिमटा, फुँकनी, आटा, जेवर आदि सब कुछ कुर्क कर लिया। मकान भी कुर्क हो गया।

प्रदीप: अंग्रेजों द्वारा उत्पीड़न के डर से अनेक क्रांतिकारियों के परिजनों ने उनसे संबंध-विच्छेद कर लिए थे। अशफाक उल्ला के भाई-बहनों, बाकी सगे-संबंधियों का व्यवहार कैसा रहा? 8 अक्टूबर, 1927 को जेल से अपनी माँ को लिखे पत्र में अशफाक उल्ला ने अपने कुछ संबंधियों की बेवफाई का जिक्र बड़े स्पष्ट शब्दों में किया है। इस बारे में आप क्या सोचते हैं?

अशफाक: जी हाँ, खानदान में कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्होंने पहले तो यह सलाह दी कि अशफाक उल्ला को सरकारी गवाह बन जाना चाहिए। लेकिन वे इसके लिए किसी भी कीमत पर तैयार नहीं थे। ऐसे में उन लोगों ने अपनी नौकरी, जमीन-जायदाद की चिंता में बात करनी ही बंद कर दी थी। लेकिन अशफाक उल्ला के हकीकी भाई हमेशा उनके साथ रहे। जिस पत्र का आप जिक्र कर रहे हैं उसमें उन्होंने लिखा था - "आपके खानदान वालों को भी देख लिया और अपने खानदान वालों को भी देख लिया। मेरा खानदान मेरे हकीकी भाई, मेरी भावज, बहन और बहनोई हैं। और मुल्क के हिंदू और मुसलमान मेरे भाई व बुजुर्ग हैं और किसी बदमाश से वास्ता नहीं।" वे देश के करोड़ों हिंदू-मुसलमानों को ही अपना परिवार, अपना खानदान मानते थे। एक बात और बताऊँ, उनके वकील थे कृपाशंकर हजेला। एक बार, हजेला साहब ने उन्हें सलाह दी कि अपने किए पर पश्चाताप करते हुए एक बयान दे दिया जाए तो फाँसी से बचा जा सकता है। यह सुनकर अशफाक उल्ला बहुत निराश हुए और कहा कि हजेला साहब बहुत सोच-समझकर मैंने आपको अपना वकील नियुक्त किया था, आपसे मुझे ऐसी ऐसी सलाह की अपेक्षा नहीं थी। कहने का अभिप्राय यह है कि वे अपने सिद्धांत से जरा भी हटने को तैयार नहीं थे, इसलिए कुछ लोगों ने हमारे परिवार से दूर कटने में ही बेहतरी समझी।

प्रदीप: अशफाक उल्ला के लेखों से पता चलता है कि वे सांप्रदायिक कट्टरता के घोर विरोधी थे। वे हिंदू और मुसलमानों, दोनों से ही बार-बार अपनी निष्ठा को मजहबी पूर्वाग्रहों से मुक्त कर राष्ट्र को समर्पित करने का निवेदन करते हैं। इसके बारे में आप कुछ प्रकाश डालना चाहेंगे?

अशफाक: जी हाँ, वे धार्मिक कट्टरता के घोर विरोधी थे। उनके लिए सबसे बड़ा धर्म था इंसानियत और देशप्रेम। वे वैज्ञानिक सोच रखते थे। वे लिखते हैं कि न तो 20 करोड़ हिंदुओं को मुसलमान बनाया जा सकता है और न ही 7 करोड़ मुसलमानों को हिंदू। इसलिए, अच्छा यही होगा कि दोनों इस सच्चाई को समझें और मिलकर भारत की आजादी के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ें। उनका एक शेर भी है -

'ये झगड़े और बखेड़े मेट कर आपस में मिल जाओ, अबस तफरीक है तुममें ये हिंदू-ओ- मुसलमाँ की।'

प्रदीप: अशफाक उल्ला स्वतंत्रता के पश्चात किस तरह के भारत का स्वप्न देखते थे?

अशफाक: आप उनका लेख पढ़ें, उनका चिंतन स्पष्ट था। वे एक ऐसे समाज की कल्पना करते थे जिसमें हर इंसान को बराबरी के अवसर होंगे। कोई छोटा-बड़ा नहीं होगा। वे लिखते हैं - "वे दिन जल्दी आए जब छत्तर मंजिल लखनऊ में मिस्टर खलीकुज्जमा, जगतनारायण मुल्ला और राजा साहब महमूदाबाद के सामने मजदूर-किसान कुर्सी डालकर बैठे मिलें।" वे किसानों और मजदूरों के लिए लिखते हैं कि यदि मेरा वश चले तो मैं दुनिया की हर चीज उनके नाम कर दूँ।

,

प्रदीप: अशफाक उल्ला की गिरफ्तारी के बाद परिवार को किस-किस तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा?

अशफाक: अंग्रेजों की पुलिस ने परिवार को परेशान करने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। दिसंबर 25 या 26 की रात थी, सर्दी का मौसम था। मेरे पिताजी उस समय 5 साल के और मेरी बुआ 4 साल की थी। आधी रात के बाद पुलिस कुर्की के आदेश लेकर घर पर आ धमकी। मेरे दादा रियासत उल्ला खाँ जी के सामने उनके दोनों बच्चों के लिहाफ, बिस्तर और चारपाई भी ले लिए। सर्दी की वह रात कैसे बीती होगी अनुमान लगा लीजिए। घर से चिमटा, फुँकनी, आटा, कपड़े आदि जो मिला सब ले गए। मकान कुर्क कर लिया गया। तो देखिए, एक तरफ तो ये परेशानियाँ थीं, ऊपर से मुकदमे का बेहिसाब खर्च और कल तक जो हमसाया बने फिरते थे, पुलिस के उत्पीड़न के डर से उन्होंने भी नजरें फेर लीं। यह सब कुछ सहकर भी अशफाक उल्ला के भाई आखिरी दम तक उनके साथ खड़े थे।

प्रदीप: स्वतंत्र भारत की सरकार ने अशफाक उल्ला के परिवार की किस तरह सुध ली?

अशफाक: देखिए, हमारा परिवार कोई अकेला नहीं था, अधिकांश शहीदों के परिजनों को स्वतंत्रता के पश्चात भी उपेक्षा का शिकार होना पड़ा। चंद्रशेखर आजाद जैसे शूरवीर की माँ को भूख और गरीबी का जो अभिशाप झेलना पड़ा, वह अकथनीय है। रामप्रसाद बिस्मिल की माँ व बहन भी भारी गरीबी में रहीं। कमोबेश सभी की हालत खराब थी।

प्रदीप: जिस भारत के लिए रामप्रसाद बिस्मिल व अशफाक उल्ला जैसे क्रांतिकारियों ने हँसते हुए फाँसी के फंदे चूमे, आपको क्या लगता है, क्या उन बलिदानियों के सपने पूरे हुए या कुछ कसर रह गई?

अशफाक: आजादी के बाद बहुत काम हुआ है, ऐसा नहीं है कि कुछ नहीं हुआ। हाँ, बहुत कुछ करना बाकी है। समाज में आपसी भाईचारा बना रहे, बल्कि और मजबूत हो। देश की उन्नति के लिए सबको मिलकर प्रयास करना होगा।

प्रदीप: अशफाक उल्ला बहुत अच्छे शायर भी थे, आज की बातचीत को उनके किस शेर के साथ सम्पन्न करना चाहेंगे?

अशफाक: अशफाक उल्ला के अनेक शेर आज भी प्रेरणा देते हैं और बहुत लोकप्रिय भी हैं। फिर भी दो शेर आपको सुनाता हूँ:

'मौत और जिंदगी है दुनिया का इक तमाशा, फरमान कृष्ण का था अर्जुन को बीच रण में। कुछ आरजू नहीं है, है आरजू तो ये है, रख दे कोई जरा सी खाक-ए-वतन कफन में।'

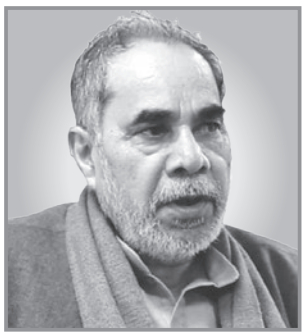

रामबहादुर राय

स्वाधीनता आंदोलन में मुसलमान

स्वाधीनता आंदोलन का इतिहास तो जटिल है ही, इसमें मुसलमानों के योगदान का विषय भी कम जटिल नहीं है। अंतर्विरोधी तथ्यों से भरे अतीत की परतें खोलने का एक प्रयास

स्वाधीनता आंदोलन का इतिहास बहुत लंबा है। लेकिन इस लेख में वह कालखंड है, जिसे ब्रिटिश शासन का समय कहते हैं। फिर भी इसका दौर और दायरा बड़ा है। इसके अनेक चरण हैं। उसमें तीन तत्व की बातें हर चरण में दिखती हैं, बलिदान, तप और सत्याग्रह। बलिदान की राह क्रांतिकारियों ने चुनी। तप, उनका मार्ग है, जो कहते हैं, हम कोशिश करके पा लेंगे। इसमें संकल्प का तत्व है। समाज के अग्रणी व्यक्तियों ने स्वाधीनता पाने के लिए तप का मार्ग चुना। लेकिन स्वाधीनता आंदोलन में पुराण कथा घटित न हो, ऐसा कैसे हो सकता है! आकाश से मेनका उतरी और अपना कमाल दिखाया। कुछ के तप भंग हुए। उसके रूप-रंग अलग-अलग हैं। स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में वह त्रासदी का अध्याय है। तीसरा तत्व सत्याग्रह का है। वह आदि से अंत तक जनता के कंधों पर न होता, तो स्वाधीनता की मंजिल देश नहीं पा सकता था।

उस आंदोलन को नए और सम्यक परिप्रेक्ष्य में देखने की जरूरत है। ऐसा अगर होता है, तो इतिहास में अतीतबोध के तर्क की स्थापना हो सकेगी। यह समय की माँग भी है। इसीलिए इस विषय पर 'मंथन' के संपादक ने यह अंक बनाया है। प्रश्न यह है कि इतिहास के अतीतबोध का तर्क क्या है? क्या यह कोई दार्शनिक विचारधारा है? अगर ऐसा कुछ है, तो वह जानने में जटिल होगा और साधारण नागरिक के लिए प्रयोजनहीन होगा। लेकिन बुद्धि के साधकों के लिए वह बड़ी चीज होगी। जहाँ तक मैं समझता हूँ, इस अंक से मंथन जिस तर्क की स्थापना करना चाहता है, उसका संबंध इतिहास की सिद्ध मान्यताओं को अपनाने से है। उन मान्यताओं को इतिहास की समझ में शामिल कर देने के प्रयोजन का यह प्रयास है।

तर्क व्यवहार की वे सिद्ध मान्यताएँ क्या हैं? भारत एक देश है। यह एक राष्ट्र भी है। लेकिन सारे देश एक राष्ट्र नहीं हैं। भारत देश को स्वतंत्र और स्वाधीन बनाने के लिए स्वाधीनता आंदोलन था। उसे साम्राज्य के शोषण और अत्याचार से मुक्ति पानी थी। अपने लक्ष्य को पाने के लिए स्वाधीनता आंदोलन को एक ऐतिहासिक प्रक्रिया से गुजरना पड़ा। जिसके उतार-चढ़ाव में एक चरण ऐसा आया, जब हिंदू-मुस्लिम संबंध में दूरी बनाने की ताकतें अपने कुचक्र में सफल हो गईं। जिससे स्वाधीनता आंदोलन को समझने और समझाने के लिए परस्पर विरोधी पैमाने अपनाए जाने लगे। इतिहासकार भी इसके शिकार हुए। स्पष्ट है कि एक असंतुलन उत्पन्न हुआ। उस इतिहास को जानना और उसमें मुसलमानों की भूमिका को समग्रता में पहचानने का यह उचित समय है। क्योंकि भारत अपने आत्मबोध से साक्षात्कार करने की दिशा में तेजी से अग्रसर है।

इतिहास वृत्तांत नहीं होता। फिर होता क्या है? वह कार्य-कारण के विश्लेषण की माँग करता है। इतिहास में एक लय भी होती है। लय में आरोह और अवरोह बहुत स्वाभाविक है। लेकिन प्रश्न तब पैदा होता है, जब मंजिल अलग-अलग हो जाती है। निश्चित ही हमें मुड़कर अपने इतिहास को यह जानने के लिए देखना होगा कि क्या-क्या गलतियाँ हुई हैं। लय कहाँ टूटी? क्यों टूटी? यह भी याद करना होगा कि अतीत में हमारी क्या उपलब्धियाँ रही हैं। ऐसा कर वर्तमान और भविष्य को सुधारा-संवारा जा सकता है। यह इसलिए जरूरी है, क्योंकि स्वतंत्र भारत के जन्म में इतिहास की घटनाएँ बहुत महत्वपूर्ण भूमिका में हैं। इतिहास के प्रति बुद्धिसंगत दृष्टिकोण अपना कर बृहत्तर राजनीतिक- सांस्कृतिक परंपरा को

समझा जा सकता है। इसके सम्यक अध्ययन के लिए जरूरी है कि स्वाधीनता आंदोलन का यथार्थपरक अध्ययन हो। ऐसे अध्ययन से गुण-दोष का अंतर स्पष्ट होगा।

स्वाधीनता आंदोलन में पवनचक्की जहाँ है, वहीं तलवारबाजी भी है। इसे समझने-जानने के लिए इतिहास की घटनाओं को पुनः नए तथ्यों के आलोक में देखना जरूरी है। इसलिए क्योंकि प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के 150 साल पर स्वाधीनता आंदोलन के बारे में अनेक प्रामाणिक बातें सामने आई। एक प्रश्न अनुत्तरित रहा है कि स्वाधीनता संग्राम का प्रारंभ कब से माना जाए। कुछ इतिहासकार तो इसे कांग्रेस के जन्म से जोड़ते रहे हैं। ऐसा करना एकांगीपन है। अब इतिहासकार आधुनिक भारत का प्रारंभ बक्सर के युद्ध से मानने लगे हैं। इसलिए यह भी स्थापित हो गया है कि सन् 1765 से स्वाधीनता आंदोलन प्रारंभ हो गया था। एक साल पहले ही बक्सर में अंग्रेज जीते थे। उस जीत से बंगाल, बिहार और उड़ीसा में ब्रिटिश शासन (ईस्ट इंडिया कंपनी) स्थापित हो गया। जिसकी शुरुआत 1757 में प्लासी की लड़ाई में अंग्रेजों की जीत से हो गई थी। इस तरह इन जीतों ने अंग्रेजों के लिए निर्मम लूट-खसोट का रास्ता खोल दिया। उस क्रूरता और लूट-खसोट के खिलाफ 'विद्रोह का पहला झंडा फकीरों के नेता मजनू शाह और संन्यासियों के नेता भवानी पाठक ने उठाया। यह क्रम 1800 तक चला।'[1] इसमें हिंदू-मुसलमान एक थे। इसकी पूरी कहानी के लिए एक पोथा भी छोटा पड़ेगा।

अंग्रेजी राज को खत्म करने के लिए 1765 से 1800 के बीच संन्यासी और फकीर विद्रोह की घटनाएँ हुई। ये उदाहरण साझा प्रयास के हैं। इनमें चर्चित घटनाएँ त्रिपुरा के शमशेर गाजी, चटगाँव के दिलावर खाँ से लेकर अवध के वजीर अली के संगठित विद्रोह तक की हैं। ये कुछ उदाहरण हैं, सभी नहीं। इसी तरह ये घटनाएँ इतिहास की किताबों में छिटपुट दिखाई गई हैं। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं था। इनमें एक कार्य-कारण संबंध दिखता है क्योंकि इनमें किसान और शिल्पकार संगठित होकर लड़े। दूसरी तरफ अंग्रेजों की क्रूरता और अन्याय का उस समय सबसे बड़ा उदाहरण सामने आया जब महाराजा नंद कुमार को 5 अगस्त, 1775 के दिन एक चौराहे पर लोगों की भीड़ में फाँसी पर लटका दिया गया। ये बातें नए शोध से सामने आई हैं। अंग्रेजों की क्रूरता के शिकार हिंदू और मुसलमान समान रूप से हैं।

अंग्रेजों से मुक्ति के लिए साझा प्रयास का बड़ा उदाहरण वाराणसी में मिलता है। वजीर अली को जगत नारायण सिंह की मदद मिली। जिसमें अंग्रेजों से बड़ी लड़ाई हुई। यह बात अलग है कि कंपनी की फौज को सफलता मिली। यह बात 1797 की है। इसका उल्लेख इतिहासकार पी.एन. चोपड़ा ने भी अपनी किताब में किया है।[2] उन्होंने लार्ड वेल्सले के कथन से इसकी पुष्टि की है कि विद्रोह में मुसलमान बढ़-चढ़कर शामिल थे। 1816 में बरेली में एक विद्रोह हुआ, जिसका नेतृत्व मुफ्ती मुहम्मद ऐवाज कर रहे थे। वे रुहेलखंड के सम्मानित नेता थे।

उसी दौर में वहाबी और फरायजी विद्रोहों की घटनाएँ हुई। इनसे स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में एक नया आयाम जुड़ा। उन घटनाओं में मुसलमानों का जो लोग नेतृत्व कर रहे थे, वे जेहाद (धर्मयुद्ध) का रास्ता दिखाते हैं। इसमें अपने खोए हुए प्रभुत्व को प्राप्त करने की भावना थी। इसके पहले उदाहरण शाह वलीउल्लाह हैं। एक तरफ मुगल सत्ता का पतन हो रहा था और उससे मुसलमानों में बेचैनी थी। ऐसे समय में वलीउल्लाह सामने आते हैं। 1732 में वे मक्का-मदीना पहुँचे। वहां दो वर्ष रहकर वे दिल्ली लौटे। इस्लाम की गिरती हुई दशा से वे भली-भाँति परिचित थे। उन्होंने इसके लिए दो कारण बताए। पहला, कुरान और हदीस का अध्ययन न करना। दूसरा, मुसलमानों में फूट। अपने सिद्धांतों के प्रचार के लिए 1743 में उन्होंने एक मदरसा स्थापित किया।

इस 'पतन' से मुसलमानों को निकालने के लिए शाह वलीउल्लाह ने एक आंदोलन चलाया। वे मुसलमानों की खोई हुई प्रधानता को पुनः प्राप्त करना चाहते थे। साथ ही वे मुसलमानों को कुरान का अनुयायी बनाना चाहते थे। अरब की परंपराओं को ही वे भारतीय मुसलमानों के लिए लक्ष्य मानते थे और मरते समय उनके लिए यह वसीयत छोड़ गए थे कि वे हिंदुओं के रीति-रिवाजों को न अपनाएँ। इस प्रकार वह परंपरा आरंभ हुई जो राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में हिंदू और मुसलमान को एक-दूसरे से अलग करती चली गई।'[3] ऐसा ही मत इतिहासकार मुबारक अली का भी है। वे लिखते हैं, 'शाह वलीउल्लाह का मानना था कि हिंदुओं के विरुद्ध जेहाद छेड़कर मुस्लिम संप्रदाय भारत में बचा रह सकता है।'[4] 'इस नई भूमिका को निभाने वाले पहले धार्मिक नेता शाह वलीउल्लाह थे। धर्म के राजनीतीकरण और भारतीय उलेमा के लिए नई भूमिका के निर्धारण का श्रेय इन्हें ही देना चाहिए।'[5] उनकी मृत्यु 1763 में हो गई। शाह वलीउल्लाह के बाद

अशफाक उल्ला खाँ

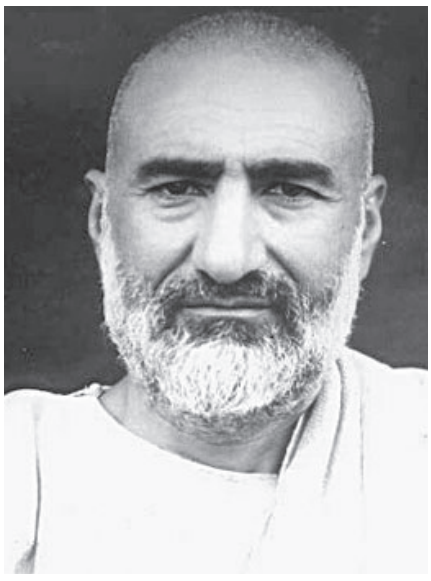
खान अब्दुल गफ्फर खान

मुसलमानों के उत्थान एवं प्रगति का जिम्मा उनके बेटे अब्दुल अजीज पर आया।

प्रो. एम.एस. जैन का मत है, 'वलीउल्लाह के समय में दिल्ली के इस्लामी राज्य में कुछ थोड़ी जान बची थी, लेकिन अब्दुल अजीज के समय वह नाम मात्र की ही रह गई थी।'[6] शाह वलीउल्लाह के आंदोलन का दूसरा पक्ष मुसलमानों की राजनैतिक शक्ति को पुनः स्थापित करना था। यह तब ही संभव था जब उनमें संघर्ष और जेहाद की भावना जागृत की जाए। इसके लिए अब्दुल अजीज को ऐसे शिष्यों की आवश्यकता थी जो इस जेहाद का संचालन कर सकें। उन्होंने अपने शिष्यों के एक मंडल का गठन किया, जिसमें सैयद अहमद बरेलवी, शाह मोहम्मद इस्माइल, मौलना अब्दुल हैई शाह इसहाक थे। इस मंडल का नेतृत्व शाह इसहाक करते थे और जेहाद के संचालन का कार्य सैयद अहमद बरेलवी को दिया गया।'[7] इस मंडल ने एक फौज बनाई। उसके लिए प्रचार किए। उस प्रचार में मुसलमानों को हिंदुओं के रीति-रिवाजों से मुक्ति दिलाने का विचार होता था। स्वाधीनता आंदोलन में भटकाव और मजहबी रंग वहाबी आंदोलन की उपज है। आज यह नतीजा निकाला जा सकता है कि वहाबियों ने बुद्धि का इस्तेमाल तो किया, लेकिन वे एक आयाम तक सिमट कर रह गए। स्वाधीनता आंदोलन की माँग बहुआयामी बुद्धि की थी।

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के ताने-बाने का उत्तर से दक्षिण तक विस्तार 19वीं सदी में हुआ। उस समय जनमानस अंग्रेजी राज के विरोध में था। उससे असंतोष की लहरें भीतर ही भीतर आकार ले रही थीं। लेकिन एक संगठित प्रतिरोध भारतीय वहाबियों की ओर से शुरू किया गया। इसने स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में एक नया अध्याय लिखा। 'यह सबसे शुरुआती, सबसे सुसंगत और दीर्घकालिक प्रतिरोधों में से था और सबसे अधिक उल्लेखनीय ब्रिटिश-विरोधी आंदोलन था, जो 19वीं सदी के भारतीय इतिहास में प्रभावी रहा।'[8] वह समय मुगल काल के पतन का है। जिसके कारण मुसलमानों में अराजकता, निराशा और अंध कार की भावना थी। वही दौर है जब मजहब पर राजनीति का मुलम्मा चढ़ाने के कार्य में उलेमा आगे आए।

कुछ इतिहासकार चाहते हैं कि सैयद अहमद बरलेवी को स्वाधीनता आंदोलन शुरू करने वाला पहला नायक माना जाए। लेकिन यह खोटे सिक्के को चलाने जैसा है। मौलाना सैयद अहमद बरेलवी रायबरेली के थे। पत्रकार एम. जे. अकबर ने लिखा है-'सैयद अहमद बरेलवी ने 1825 में एक जेहाद शुरू किया। बरेलवी का आंदोलन पूर्वी हिंदुस्तान में शुरू हुआ, लेकिन उन्होंने उत्तर-पश्चिम सरहदी सूबे के मालाकंद मंडल में बालाकोट नामक स्थान को अपना युद्ध का मुख्यालय बनाया।...बरेलवी की ताकत निचले दर्जे और दबे-कुचले तबके की शक्तियों को लामबंद करने में छिपी हुई थी। ...इस लंबी जंग ने अंग्रेजों के दिमाग में इस नजरिये की ताईद कर दी कि जब मुसलमान आस्था से प्रेरित होते थे तो वे ऐसे विचारों के लिए लड़ते थे जो इलाके या सल्तनत से कहीं परे तक जाते थे, और उन्हें कायल कर दिया कि इस्लाम ऐसा मजहब था, जो स्थाई युद्ध की प्रेरणा देता था।'[9]

जेहादियों की नजर में इस्लाम का भाग्य मुसलमानों की राजनैतिक शक्ति से जुड़ा था। यह एक नई भूमिका थी। जिसके मजहबी नायक शाह वलीउल्लाह हुए। डा. अतहर अब्बास रिजवी ने लिखा है, 'दिल्ली में सुन्नी मुसलमानों की राजनैतिक सत्ता कायम करना उनका एक मात्र लक्ष्य था।'[10] हालांकि उन्हें तब सफलता नहीं मिली। लेकिन उन्होंने सर्वइस्लामवाद का बीजारोपण तो कर ही दिया। जिससे भविष्य में अनेक शाखाएँ फूटीं। इस जेहाद का उद्देश्य क्या था? क्या भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के लिए वे लोग आगे आए थे? इतिहास के विद्वान प्रो. एम. एस. जैन ने इसे प्रश्नांकित करते लिखा है कि तौफीक निजामी यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि सैयद अहमद बरेलवी भारतीय स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाले प्रथम व्यक्ति थे और अंग्रेजों को बाहर निकालकर राष्ट्रीय सरकार की स्थापना करना चाहते थे जिसमें शासक के धर्म और आदर्श से कोई झगड़ा न हो।[11] सच इसके विपरीत है।

इसीलिए प्रो. एम.एस. जैन लिखते हैं, 'ऐतिहासिक संदर्भ को छोड़कर तथ्यों को गलत नीतियों के समर्थन के लिए प्रस्तुत करना ठीक नहीं है।'[12] इसका विस्तार उन्होंने इन शब्दों में किया है,..."सैयद अहमद बरेलवी के आंदोलन का प्रमुख उद्देश्य मुसलमानों को हिंदुओं के रीति-रिवाजों से मुक्ति दिलाना था। अधिकांश मुसलमान कुछ पीढ़ियों पूर्व हिंदू थे। वे हिंदू तीर्थों को जाते थे तथा उनके विभिन्न रीति-रिवाजों को मानते थे। सैयद अहमद बरेलवी चाहते थे कि मुसलमान इन रीति-रिवाजों को छोड़ दें।"[13] अनेक इतिहासकारों को यह तथ्य असहज कर देता है। तथ्य तो तथ्य है। जिन इतिहासकारों ने वहाबी आंदोलन और नवजागरण को विपरीत दिखने पर भी स्वाधीनता आंदोलन से जोड़ा है, वे इतिहास के साथ धोखाधड़ी के गुनहगार हैं। स्वाधीनता आंदोलन की कसौटी सिर्फ एक ही है। वह उसकी मंजिल है।

अगर हर रास्ता स्वाधीनता की मंजिल की ओर जाता है, तब प्रश्न यह नहीं है कि कौन क्या मार्ग चुने। प्रश्न यह वास्तविक हो जाता है कि कोई भी समूह किस मार्ग के अनुकूल अपने को पाता है। वही मार्ग उसका अपना होगा। लेकिन वह मार्ग सही है, इसका निर्धारण इससे होगा कि क्या वह मंजिल की दिशा में ही है। इस कसौटी पर शाह वलीउल्लाह और सैयद अहमद बरेलवी का रास्ता अंग्रेजों से लड़ने के बजाए हिंदुओं से लड़ने का दिखता है। उनका लक्ष्य स्वाधीनता के गलत भाष्य में प्रकट होता है। वह इस्लामवाद की स्थापना का है। इससे यह बात सामने आती है कि वह जंग वर्चस्व की थी। जिससे स्वाधीनता आंदोलन के रथ को रोकने की जिद्द निकली। यहाँ इस फर्क को ध्यान में रखना चाहिए कि साधारण हिंदू और मुसलमान एक ही मंजिल से प्रेरित थे। वह स्वाधीनता की थी। यह बात दूसरी है कि नेतृत्व में समय-समय पर भटकाव और भ्रम शुरू से ही बना रहा।

लेकिन इतिहासकार जिसे फरायजी आंदोलन के नाम से महिमामंडित करते हैं, वह भी 19वीं सदी के पूर्वार्ध का है। इस आंदोलन के नेता हाजी शरियत उल्लाह थे। कम उम्र में वे मक्का चले गए। वहाँ 20 वर्षों तक रहे। 1802 में वे बंगाल वापस आए। जो प्रचार शाह वलीउल्लाह और उनके शिष्यों ने दिल्ली, उत्तर प्रदेश और बिहार के क्षेत्रों में मुसलमानों के बीच किया, वही हाजी शरियत उल्लाह ने बंगाल में किया। उर्दू में जिसे फरायज कहते हैं, उसे हिंदी में

कर्तव्य पालन कहेंगे। इसीलिए वह फरायजी आंदोलन कहलाया। शरियत उल्लाह ने बंगाल को दारुलहरब घोषित कर दिया था। इस्लामी नियमानुसार दारुलहरब वह क्षेत्र है, जहाँ मुसलमान युद्ध लड़ रहे हों। प्रो. एम.एस. जैन ने लिखा है, वहाबी और फरायजी आंदोलनों का प्रभाव यह पड़ा कि "हिंदू पवित्र स्थानों की यात्राएं मुसलमानों में अलोकप्रिय होती चली गईं। जिससे मुसलमान अपनी पृथकता विकसित कर सके।... ये सिद्धांत अधिकांश मुसलमान नेताओं के चिंतन की पृष्ठभूमि बन गए।"[14] सोचिए, इसका मुसलमानों के मन पर कैसा दुष्प्रभाव पड़ा होगा!

इस बात को मुबारक अली ने स्पष्ट किया है, "जेहाद आंदोलन से भारतीय मुसलमानों की मानसिकता का पता चलता है कि वे भारतीय राष्ट्रवादियों के साथ मिलकर संगठित रूप से विदेशियों के विरुद्ध लड़ने के लिए तैयार नहीं थे। सिक्खों के साथ उनके युद्ध से अंग्रेजों को मदद मिली और वे सिक्खों को हराकर पंजाब पर कब्जा जमा सके। अंततः मुसलमानों को कोई भी लाभ नहीं हुआ। उल्टे संप्रदाय और अधिक टुकड़ों में बँट गया और उसमें वह क्षमता ही शेष न रही कि खोई मर्यादा फिर से पाने के लिए वह कोई लड़ाई लड़ सके।"[15]

स्वाधीनता आंदोलन के इस प्रकार के कई मोड़ ऐसे हैं जो इतिहास को भी उलझाते हैं। इसमें स्वयं इतिहासकारों की बड़ी भूमिका भी रही है। स्वाधीनता आंदोलन में अनेक मोड़ हैं। उन्हें कैसे देखें और समझें? इसे इतिहासकारों की नई प्रजाति ने अधिक उलझा दिया है। इस प्रजाति को उपाश्रयी (सबाल्टर्न) इतिहासकार के नाम से जाना जा रहा है। लेकिन स्वाधीनता आंदोलन के कालखंड पर पहले जैसा विवाद नहीं है। वह कालखंड अंग्रेजी राज का है। स्वाधीनता आंदोलन में मुसलमानों की भूमिका का सिंहावलोकन करें, तो पाएंगे कि उनका नेतृत्व जो लोग कर रहे थे, वे कम से कम पाँच रंगों में दिखते हैं, अर्थात उन्हें पाँच श्रेणियों में रखा जाना चाहिए। क्रांतिकारी, सर्वइस्लामवादी, कांग्रेसी, मुस्लिम लीगी और राष्ट्रवादी के विविध रंगों में वे पाए जाते हैं। यह वर्गीकरण निर्गुण और निराकार हो जाएगा, अगर इसके अर्थ को यहाँ स्पष्ट न करें। क्रांतिकारी और राष्ट्रवादी की कोटि में जो थे, वे भारतभूमि की मुक्ति को ही अपने जीवन का एकमात्र लक्ष्य समझते थे। तभी तो अशफाक उल्ला खाँ ने फाँसी का फंदा चूमा। भारतप्रेम की भूमि पर राष्ट्रभक्ति का जो बीज अंकुरित हुआ, उससे दो पंखुड़ियाँ निकली, क्रांति और राष्ट्रीयता की। अन्य जो हैं, वे सत्ता की धारणाएँ हैं। दूसरे शब्दों में स्वाधीनता आंदोलन की मटमैली धाराएँ भी उन्हें कह सकते हैं।

सर्वइस्लामवाद की धारणा से एक भ्रम बना हुआ है कि मुसलमान एक इकाई हैं। यह किसी भी तरह से सच नहीं है। इसे स्वाधीनता संग्राम की दृष्टि से देखें, तो ब्रिटिश शासन की चुनौतियों के सामने मुसलमानों की प्रतिक्रिया अलग-अलग रही है। इसे बहुत सटीक ढंग से पाकिस्तान के एक इतिहासकार मुबारक अली ने लिखा है, "ब्रिटिश शासन तथा ब्रिटिश चुनौतियों को लेकर मुसलमानों में विभिन्न प्रतिक्रियाएँ हुई। दक्षिण भारत में मुसलमान अधिकांशतः व्यापारी थे। व्यापारी होने के नाते उनमें लचीलापन था और बदली हुई परिस्थितियों से समझौते को वे प्रस्तुत थे। उन्होंने अंग्रेजों की श्रेष्ठता को स्वीकारा और उनकी भाषा व संस्कृति सीखने लगे। उत्तरी भारत में प्रतिक्रिया इससे भिन्न थी।"[16] सच तो यह है कि मुसलमानों में सामाजिक विविधिता और विभिन्नता रही है और जमाने के साथ बनी हुई है। जिसका वर्णन इतिहास के पन्नों में भी दर्ज है। "हर प्रदेश में मुस्लिम समुदाय तीन बृहत श्रेणियों में बँटा मिलता है: एक - अशराफ, दो- अजलाफ और तीन - अरजाल। अशराफ का अर्थ है कुलीन। इस श्रेणी में विदेशी मुसलमानों के शुद्धवंशज तथा हिंदू उच्च जातियों से धर्मांतरित मुसलमान शामिल थे। निचली श्रेणी के सभी धर्मांतरित मुसलमान 'अजलाफ' 'अभागे' या 'नीच लोग' की तिरस्कारपूर्ण संज्ञा से जाने जाते थे।"[17] उनके प्रभाव और दुष्प्रभाव का इतिहासकारों ने खूब अध्ययन किया। वह प्रक्रिया अपनी निरंतरता में चल रही है।

स्वाधीनता आंदोलन में दोनों तरह के उदाहरण हैं, सही नेतृत्व के, जिसमें राष्ट्रीयता की भावना प्रधान है। और मुसलमानों की भावना के शोषण के भी। पहली में वे नेता हैं, जो राष्ट्रीयता से ओतप्रोत हैं। दूसरी जमात उन नेताओं की है, जो सर्व इस्लामवाद (पैन इस्लामिज्म) की धुरी पर अपने पैंतरे बदलते रहे। वह भी सांप्रदायिकता का स्रोत बना। रेजाउल करीम ने अपनी किताब 'मुस्लिम्स एंड दी कांग्रेस' में लिखा है कि कुछ नेताओं ने शिक्षा की कमी का फायदा उठाकर मुसलमानों का कट्टरपंथी बातों के लिए शोषण किया। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि उस समय जो परिवर्तन हो रहे थे, उससे मुसलमान अवगत न हों।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम हिंदू-मुस्लिम एकता का कीर्तिमान बनाता है। वह अंतिम मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर के नेतृत्व में लड़ा गया। जिससे अंग्रेज मुसलमानों पर कुपित हो गए। इतिहास का एक सच यह भी है कि उस संग्राम ने स्थापित किया कि भारतीय समाज नए दौर में कदम रख चुका है। ऐसी ही परिवर्तित परिस्थिति में सर सैयद अहमद खां पर्दे पर आते हैं। वे आज भी पहेली बने हुए हैं। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी "सर सैयद अहमद खां के पूर्वज शाहजहाँ के काल में हिरात से चल कर आए थे। तब से उनके परिवार का रिश्ता

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम हिंदू-मुस्लिम एकता का कीर्तिमान बनाता है। वह अंतिम मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर के नेतृत्व में लड़ा गया। जिससे अंग्रेज मुसलमानों पर कुपित हो गए। इतिहास का एक सच यह भी है कि उस संग्राम ने स्थापित किया कि भारतीय समाज नए दौर में कदम रख चुका है। ऐसी ही परिवर्तित परिस्थिति में सर सैयद अहमद खां पर्दे पर आते हैं। वे आज भी पहेली बने हुए हैं। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी सर सैयद अहमद खां के पूर्वज शाहजहाँ के काल में हिरात से चल कर आए थे। तब से उनके परिवार का रिश्ता किसी न किसी रूप में मुगल दरबार से बना रहा

किसी न किसी रूप में मुगल दरबार से बना रहा।"[18] अपने पिता के निधन के बाद उन्होंने न्यायालय कार्य संबंधी प्रशिक्षण अपने चाचा के यहाँ सीखा। दिल्ली में ही अंग्रेज जज हेमिल्टन से उनका संपर्क हुआ। उसने उन्हें नायब मुंशी बनाया। मुंसफी की परीक्षा पास कर वे 24 दिसंबर, 1841 को मैनपुरी में पहली बार मुंसिफ नियुक्त हुए। इस तरह ईस्ट इंडिया कंपनी में एक पद उन्हें प्राप्त हुआ। "1857 की घटनाओं में सैयद अहमद खां न सिर्फ एक सरकारी मुलाजिम की हैसियत से शरीक थे, बल्कि वे सबसे पहले भारतीय थे, जिन्होंने उसके बारे में लिखा, उसका विवेचन किया।"[19]

क्यों, यह जानना जरूरी है। इसलिए कि "सैयद (अहमद खां) की जिंदगी में यह सबसे नाजुक दौर था। दिल्ली की तबाही और अपने नाते-रिश्तेदारों की मौत ने उनके दिलो-दिमाग को झकझोर दिया था।"[20] इसका परिणाम होना ही था। "अंग्रेजी हुकूमत और अपनी कौम के बीच वे एक गहरे तनाव से घिर गए।"[21] उसी में उन्होंने 'रिसाला-ए-असबाबे बगावते हिंद' लिखा। इसमें उनका 1857 पर विवेचन-विश्लेषण है। क्या वे भारत के मुसलमानों की भावना व्यक्त कर रहे थे? इसे पूरा समझने के लिए यह जानना जरूरी है, "जीवन में सैयद अहमद अजलाफ अथवा पसमांदा मुसलमानों को पसंद नहीं करते थे। बेशक वे अशराफ मुसलमान थे, आभिजात्य वर्ग के हितैषी थे। उनके संस्कार और सोच में यह बात मौजूद थी।"[22] इसके अलावा यह भी जानना चाहिए कि "दरअसल, सैयद अहमद खुद एक दौर में शाह वलीउल्लाह की विचारधारा और उससे प्रेरित वहाबी आंदोलनकारियों (जेहाद के नेताओं) से काफी प्रभावित थे।"[23]

सर सैयद अहमद खां के व्यक्तित्व के जिस पक्ष पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया है, उसे अपनी किताब 'बगावत और वफादारी, नवजागरण के इर्द-गिर्द' में वीर भारत तलवार इस तरह लिखते हैं, "इसी प्रभाव के तहत 1850 में उन्होंने 'सुन्नत-दर-रद्द बिद्अत' किताब लिखी थी।"[24] वीर भारत तलवार ने सर सैयद अहमद खां में आए बदलाव को समझाने के लिए के. एम. अशरफ के कथन का इस प्रकार उल्लेख किया है, "1846 से पहले सैयद खुद जेहाद का ऐलान करने वाले नेताओं के प्रति बहुत आदर भाव रखते थे।"[25] जामिया मिलिया के एक प्रोफेसर राहुल रामगुंडम, सैयद अहमद खां की 1857 पर जो किताब है, उसको एक पर्चा बताते हैं। जिसमें वे गहरे उतर कर पाते हैं कि इस पर्चे में सत्ता की भाषा है।

शुरू से ही मुसलमानों में स्वाधीनता आंदोलन के दौरान दो धाराएँ थीं। पहली में सत्ता की भाषा है, जिसमें मजहब की चिंता है। दूसरी में स्वतंत्रता और उससे उत्पन्न खुशहाली का लक्ष्य है। पहली धारा अशराफ जमात की है, तो दूसरी में वे हैं जिनके पूर्वज हिंदू थे, जिन्हें अजलाफ की श्रेणी में मुस्लिम समाज में माना जाता है। सर सैयद अहमद खां ने एक और किताब लिखी है, 'दी लॉयल मोहम्मडन ऑफ इंडिया।' जिसमें वे साबित करने की कोशिश कर रहे हैं कि 1857 के संग्राम में मुसलमानों ने अंग्रेजों की जान बचाने में सबसे आगे बढ़कर अपना फर्ज निभाया था। इस तरह उनकी भूमिका बदली। वह दोहरी थी। एक तरफ वे अंग्रेजों के प्रति मुसलमानों को निष्ठावान बनाने के लक्ष्य से कार्य करने लगे, तो दूसरी तरफ मुसलमानों के दिमाग में अंग्रेजों के प्रति बैठी कुछ धाराणाओं को दूर करने की कोशिश शुरू की।

शुरू से ही मुसलमानों में स्वाधीनता आंदोलन के दौरान दो धाराएँ थीं। पहली में सत्ता की भाषा है, जिसमें मजहब की चिंता है। दूसरी में स्वतंत्रता और उससे उत्पन्न खुशहाली का लक्ष्य है। पहली धारा अशराफ जमात की है, तो दूसरी में वे हैं जिनके पूर्वज हिंदू थे, जिन्हें अजलाफ की श्रेणी में मुस्लिम समाज में माना जाता है। सर सैयद अहमद खां ने एक और किताब लिखी है, 'दी लॉयल मोहम्मडन ऑफ इंडिया।' जिसमें वे साबित करने की कोशिश कर रहे हैं कि 1857 के संग्राम में मुसलमानों ने अंग्रेजों की जान बचाने में सबसे आगे बढ़कर अपना फर्ज निभाया था

सर सैयद अहमद खां के चिंतन का आधार यहाँ समझ लेना चाहिए। एक बात जानना जरूरी है कि 19वीं सदी के अंत तक भारत में अंग्रेजी शासन को समाप्त करने का विचार प्रभावशाली नहीं था। ऐसी परिस्थिति में सर सैयद अहमद खां ने भी माना कि अंग्रेजी शासन तो स्थाई है। इसलिए उन्होंने मुसलमानों को अंग्रेजी शासन में प्रश्रय उपलब्ध कराने पर अपना ध्यान केंद्रित किया था। इसका दूसरा अर्थ भी है। वह यह कि वे जो कुछ कर रहे थे, वह मुसलमानों के कुलीन वर्ग के राजनैतिक हितों तक सीमित था। उन्होंने लिखा, "मुसलमान इस देश के मूल निवासी नहीं हैं। वे बाहर से आए हैं और अपने गुजर-बसर के लिए पूरी तरह से सरकारी नौकरियों पर निर्भर करते रहे हैं।"[26]

सर सैयद अहमद खां ने यह अनुभव कर लिया था कि अंग्रेजों को भारतीय मुसलमानों की निष्ठा पर संदेह था। उनका विश्वास था कि कुलीन मुसलमान सरकारी नौकरियों पर निर्भर थे। उनकी प्रगति के लिए अंग्रेजों का आश्रय जरूरी था। इसलिए उन्होंने अपना स्वाभिमानी स्वभाव छोड़ा। खुद को बदला। अंग्रेजों के प्रति निष्ठा पैदा करने के लिए नए-नए तर्क दिए। उन्होंने "लाहौर में 1873 में भाषण देते हुए कहा था कि मुसलमानों का अंग्रेजों से शत्रुता रखना वैसा ही होगा जैसे नदी में रहकर मगरमच्छ से बैर रखना। इसलिए उनके लिए यह आवश्यक है कि वे उनसे मैत्री रखें।"[27] मुसलमानों के हितों के लिए सर सैयद अहमद खां ने जो तर्क विकसित किए उसे अलीगढ़ विचार पद्धति का नाम मिला। इसी तर्क से यह बात मुसलमानों के दिमाग में बैठाई गई कि लोकतंत्र मुसलमानों के लिए हितकर नहीं है। इसका कारण यह दिया गया कि लोकतंत्र में संसद बनेगी। उसमें दो दल होंगे। वे हिंदुओं और मुसलमानों के होंगे। हिंदू बहुसंख्यक है और मुसलमान अल्पसंख्यक है। "भारतीय राजनीति में इस प्रकार का तर्क पहली बार सर सैयद अहमद खां ने ही प्रस्तुत किया था।"[28]

इस दौर में ब्रिटिश समर्थक मुस्लिम नेताओं में अब्दुल लतीफ, सर सैयद अहमद

खां और आमिर अली के नाम प्रमुख हैं। "ये सभी मुसलमानों, खास तौर पर ढहते हुए कुलीन तंत्र और उनके परिजनों तथा पुरोहित वर्ग, जिसे उलेमा कहा जाता है उनकी अथाह कुंठा के कारण संत्रासग्रस्त थे।"[29] लेकिन सर सैयद अहमद खां को जो स्थान इतिहास में प्राप्त है, वह किसी दूसरे मुस्लिम नेता को नहीं मिला। डा. ताराचंद ने "मुस्लिम दिमाग को ब्रिटिश समर्थक तथा ब्रिटिश विरोधी की जगह आधुनिक तथा पारंपरिक के रूप में विभाजित किया है।"[30] इतिहासकार शांतिमय रे ने अपने विश्लेषण का सार-सूत्र इन शब्दों में यह लिखा है, "मुस्लिम नवजागरण केवल अंग्रेजी शिक्षा तक ही सीमित रह गया। उनके पास आम तौर पर किसी विचारधारात्मक संघर्ष का अनुभव नहीं था जिससे वे इस्लाम की सीमाओं से पार जा पाते।"[31]

सर सैयद अहमद खां की सोच कांग्रेस विरोध में भी दिखी। इसके लिए उन्होंने 'इंडियन पैट्रियाटिक एसोसिएशन' बनाया। अगर वे हिंदू-मुस्लिम एकता की राह पकड़ते, तो उन्हें राष्ट्रीयता का पितामह माना जाता। लेकिन वे चूक गए। उनसे उम्र में छोटे लेकिन प्रतिष्ठित बदरुद्दीन तैयब ने वह कमी पूरी की। वे 1887 में कांग्रेस के तीसरे अध्यक्ष हुए। यह ऐसा उदाहरण है, जो बताता है कि अलीगढ़ आंदोलन के समानांतर मुसलमानों में एक चिंतन प्रक्रिया चल रही थी। वह जहाँ राजनैतिक थी, वहीं मजहबी भी। राजनीति में नेतृत्व बदरुद्दीन तैयब जी कर रहे थे और मजहबी धारा को कासिम नानौवती, रशीद अहमद गंगोही, मौलाना महमूद-उल-हसन शैखुल हिंद और अहमद हुसैन मदनी कर रहे थे।

वे 'परंपरावादी उलेमा' थे। इनका बड़ा योगदान है। उस समय जो मुसलमानों में बाधाएँ थीं उन्हें पार कर ये स्वाधीनता आंदोलन का हिस्सा बने। इतिहास में उलेमाओं की दो तस्वीरें हैं। पहली देवबंद की और दूसरी शामली की। डॉ. ताराचंद ने लिखा है, "वस्तुतः शामली और देवबंद एक ही तस्वीर के दो पहलू हैं। अंतर सिर्फ हथियारों में है। अब तलवार और भाले की जगह कलम और जुबान ने ले ली। जहाँ शामली में राजनैतिक स्वतंत्रता और धर्म तथा संस्कृति की आजादी के लिए हिंसा को माध्यम बनाया गया वहीं देवबंद में इन्हीं

दारुल उलूम की सबसे बड़ी देन यह है कि उस संस्था ने अंग्रेजी सत्ता को समाप्त करने के लिए हिंदुओं के साथ सहयोग की नीति अपनाई। इसका गहरा प्रभाव तमाम राष्ट्रवादी मुसलमानों पर पड़ा। उसी धारा से शिबली नोमानी, अबुल कलाम आजाद आदि निकले। यह भी याद करना चाहिए कि 1914 में जब अफगानिस्तान में पहली स्वतंत्र भारतीय सरकार कायम हुई तो उसके राष्ट्रपति राजा महेंद्र प्रताप और विदेश मंत्री उबेदुल्ला सिंधी बने। उसी सरकार ने एक गुप्त योजना बनाई, जिसे अंग्रेजों ने 'रेशमी रूमाल आंदोलन' का नाम दिया। स्वाधीनता आंदोलन का एक नया और राजनैतिक दौर कांग्रेस के जन्म से शुरू होता है

लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए शांतिपूर्ण तरीकों के सहारे एक शुरुआत की गई। हालांकि रास्ता एक दूसरे से अलग जाता हुआ दिखता है लेकिन ये एक ही मंजिल की तरफ जाता है। यह बेशक एक महान उपलब्धि थी और उन मुसलमानों की जीवंतता और उनका उत्साह काबिल-ए-गौर था, जो 1857 के दुर्भाग्यशाली दिनों के थोड़े दिनों के बाद और अत्यंत हतोत्साहकारी परिस्थितियों में भी अधिकारिक ब्रिटिश शिक्षा व्यवस्था द्वारा खतरे में डाल दिए गए अपने धर्म तथा अपनी संस्कृति की शिक्षा के लिए नए रास्ते तलाशने की नए सिरे से फिर से कोशिशें कर रहे थे।"[32]

स्वाधीनता संग्राम के उस चरण में मुसलमानों में एक अजीब वैचारिक परिवर्तन हुआ। 19वीं सदी के प्रारंभ में जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ थे, वे उनके सहयोगी बन गए। जो उनके सहयोगी थे, वे विरोधियों में बदल गए। ऐसी जमात का नेतृत्व परंपरावादी मुसलमानों ने की। उसे देवबंदी आंदोलन भी कहते हैं। सहारनपुर के एक छोटे से कस्बे देवबंद में दारुल उलूम (ज्ञान का घर) की स्थापना हुई। इसके संस्थापक मौलाना कासिम नानौवती थे। उसी जिले के नानौवती गाँव के वे थे। उन्होंने अपने मित्र रसीद अहमद गंगोही के साथ मिलकर एक फौजी दस्ता तैयार किया था। शामली और कैराना इलाके में ब्रिटिश सेना से लड़ाइयाँ भी लड़ीं। कई अंग्रेजों को मारा। उसकी प्रतिक्रिया में अंग्रेजों ने इस इलाके में बड़ी तबाही मचाई और 44 लोगों को फाँसी दे दी। वस्तुतः शामली और देवबंद एक ही तस्वीर के दो पहलू हैं, फर्क सिर्फ हथियारों में है। देवबंद ने तलवार की जगह कलम पकड़ ली और भाले की जगह जबान ने ले ली। दारुल उलूम ने मुसलमानों को उनकी इस्लामी पहचान के प्रति सचेत करने का प्रयास किया। दारुल उलूम की षिक्षा की जड़ें कुरान और हदीस में थी। वह इस्लामीकरण का केंद्र बना। उसकी ख्याति जब बढ़ी, तो अफगानिस्तान, इराक, ईरान, तुर्की और सऊदी अरब तक फैली। दारुल उलूम के दो छात्र मौलाना हुसैन अहमद मदनी और उबेदुल्ला सिंधी स्वाधीनता आंदोलन के बड़े नायक बने। ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध इनका लक्ष्य था।

दारुल उलूम की सबसे बड़ी देन यह है कि उस संस्था ने अंग्रेजी सत्ता को समाप्त करने के लिए हिंदुओं के साथ सहयोग की नीति अपनाई। इसका गहरा प्रभाव तमाम राष्ट्रवादी मुसलमानों पर पड़ा। उसी धारा से शिबली नोमानी, अबुल कलाम आजाद आदि निकले। यह भी याद करना चाहिए कि "1914 में जब अफगानिस्तान में पहली स्वतंत्र भारतीय सरकार कायम हुई तो उसके राष्ट्रपति राजा महेंद्र प्रताप और विदेश मंत्री उबेदुल्ला सिंधी बने।"[33] उसी सरकार ने एक गुप्त योजना बनाई, जिसे अंग्रेजों ने 'रेशमी रूमाल आंदोलन' का नाम दिया। स्वाधीनता आंदोलन का एक नया और राजनैतिक दौर कांग्रेस के जन्म से शुरू होता है। उसे अनेक नाम दिए गए हैं। लेकिन इस लेख में जो प्रासंगिक है, वह बदरुद्दीन तैयबजी और रहमतुल्ला सियानी के नाम हैं। इन्होंने कांग्रेस को अपनाया। उस समय नेतृत्व दिया, जबकि अलीगढ़ आंदोलन इस बात पर अमादा था कि मुसलमान कांग्रेस की तरफ न जाएँ।

तीसरा नाम मौलाना शिबली नोमानी का है, जो कांग्रेस के साथ मजबूती से खड़े रहे।

इन नेताओं ने संदेश दिया कि कट्टरपंथी और अंग्रेजपरस्त मुसलमान अपने समुदाय का अहित कर रहे हैं। लेकिन अंग्रेज अपनी चाल से बाज नहीं आए। पहले बंगाल विभाजन किया। फिर मुस्लिम लीग बनवाई। यहीं यह बताना उचित होगा कि बंगाल के कई मुसलमान नेताओं ने पूरे उत्साह से विभाजन विरोधी आंदोलन में हिस्सेदारी की। इसका विवरण 'आजादी का आंदोलन और भारतीय मुसलमान' में शांतिमय रे ने विस्तार से दिया है।[34] यह तो सब जानते हैं कि बंगाल विभाजन से राष्ट्रीयता की देशव्यापी लहर पैदा हुई। यह जानकारी अल्पज्ञात है कि "7 अगस्त, 1905 को कलकत्ता के टाउन हाल में विभाजन के विरोध में जो विशाल बैठक हुई उसमें मुख्य प्रस्ताव का अनुमोदन मौलवी हसीबुद्दीन ने किया।"[35]

वह राष्ट्रवादी उभार का दौर था। जिसमें ब्रिटिश शासन के क्रूर दमन ने सशस्त्र संघर्ष को जन्म दिया। वह संघर्ष में साझा था। मुसलमानों के मध्यवर्ग का एक बड़ा हिस्सा बंगाल, महाराष्ट्र, पंजाब और तमिलनाडु में उस संघर्ष में शामिल हो गया था। "मौलवी इस्माइल सिराजी ने अंगारे बरसाने वाले भाषणों से लोगों को ब्रिटिश राज के विरोध में खड़ा किया।"[36] इस तरह के व्यापक प्रतिरोध से "आतंकित ब्रिटिश सरकार ने 1909 का संवैधानिक सुधार कानून इसलिए लाया कि हिंदू-मुस्लिम एकता के आधार को कमजोर किया जा सके।"[37] वही दौर है, जब गोपनीय क्रांतिकारी समितियों के गठन का क्रम प्रारंभ हुआ। उसी समय आगा खां ब्रिटिश राज के प्रति अपनी स्वामीभक्ति का प्रदर्शन कर रहे थे, तो दूसरी तरफ खुदीराम बोस ने फाँसी के फंदे का रास्ता चुना। गिरफ्तारी से पहले उन्हें एक अनाम मुस्लिम महिला ने शरण दी थी। वे थीं, मौलवी वहीद की बहन।

यह अज्ञात-सा तथ्य है कि "दूसरे मांडले षड्यंत्र केस में 1917 में तीन विद्रोही सैनिकों को सजा-ए-मौत दी गई। वे थे, जयपुर के मुस्तफा हुसैन, लुधियाना के अमर सिंह और फैजाबाद के अली अहमद।"[38] ऐसे उदाहरणों की भरमार है। जिन्हें इतिहास के पन्नों में खोजा जा सका है। शायद ही कोई होगा, जो मौलाना मुहम्मद अली से अपरिचित हो! लेकिन कितने लोग हैं, जो बेगम अब्दी बानो से परिचित है? वे कौन थीं? अगर हम खुद से पूछें और जानने की कोशिश करें, तो खोजना मुश्किल ही होगा, पर असंभव नहीं है। पहले उस स्वाधीनता सेनानी महिला को जानें और फिर अनुभव करें कि स्वाधीनता आंदोलन में मुसलमान नामक नमक भी मिला था। वे अली बंधुओं की माता थीं। अमरोहा की रहने वाली थीं। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय उनकी उम्र पाँच साल रही होगी। भरी जवानी में वे विधवा हो गई थीं। उस समय उन्हें सलाह दी गई कि फिर से घर बसा लो। उन्होंने घर तो बसाया, परिवार भी बनाया, लेकिन वह निजी नहीं, भारतव्यापी था। पूरे स्वाधीनता आंदोलन को ही उन्होंने अपना घर-परिवार मान लिया। वे पूरे देश में बी. अम्मा के नाम से मशहूर हुई।

अली बंधु छिंदवाण्ड़ा में कैद थे। वे वहीं जाकर रहने लगीं। उस समय होमरूल आंदोलन चल पड़ा था। एनी बेसेंट नजरबंद कर दी गई थीं। देश में विरोधस्वरूप जनसभाएँ हो रही थी। "ऐसी ही एक जनसभा की अध्यक्षता कर रहे सुब्रह्मण्यम अय्यर के नाम आया उनका एक पत्र उस सभा में पढ़ा गया।"[39] आखिर उस पत्र में ऐसा क्या था कि उसे सार्वजनिक महत्त्व मिला? वह पत्र खास था। बी. अम्मा ने एनी बेसेंट के लिए लिखा था, "यह इज्जत सिर्फ उन्हीं लोगों को मयस्सर होती है जिनको खुदा मुल्क और मजहब की खातिर तकलीफ बर्दाश्त करने के लिए चुनता है।"[40] यह पत्र 4 अगस्त, 1917 का है। इस पत्र में वे लिखती हैं कि वे न सिर्फ मुसलमान औरत हैं, बल्कि उनकी परवरिश भी पुरानी रीति से हुई है। जिसमें किसी औरत का गैर-मर्द से पत्र व्यवहार मुनासिब नहीं समझा जाता।

इसके बावजूद बी. अम्मा ने अपने पत्र में लिखा, "जमाना इतनी तेजी से बदल रहा है और उसकी रफ्तार अजीब है कि अगर मुझ जैसी पुराने विचार की जईफ औरत इस प्राचीन रीति को भुलाकर एक ऐसे प्रतिष्ठित एवं सम्मानित व्यक्ति को पत्र लिखे जिनका हर कोई प्रशंसक है और फिर पत्र का विषय भी वह हो जो आज सबके दिलों में छाया हुआ है तो कोई आश्चर्यचकित करने वाली बात नहीं है। यद्यपि मैं वृद्ध हूँ किंतु उन परिवर्तनों का स्वागत करती हूँ जो आज हमारे आसपास उजागर हो रहे हैं।"[41] याद करना चाहिए कि अली बंधु की माता ने एनी बेसेंट की नजरबंदी का अपने पत्र से विरोध किया। यह प्रेरणा दो बातों के लिए असाधारण है। पहली बात यह कि उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन को मजहब से ऊपर माना। दूसरी बात, उनके पत्र में बहुत साफ है कि परंपरा कौन सी है, जिसे छोड़ देना चाहिए। यह विवेक उनमें था।

उनके ऐसे पत्र बहुत हैं, जिनमें उनकी भावनाएँ प्रकट हुई हैं। एक पत्र में वे 'वंदे मातरम्' के लिए बलिदान होने वाले नौजवानों की प्रशंसा करती हैं। उन्हें 30 दिसंबर, 1921 को अहमदाबाद में आयोजित 'अखिल भारतीय महिला कान्फ्रेंस' की अध्यक्षता करने का भी सम्मान मिला। उस मंच पर कस्तूरबा गांधी और सरोजिनी नायडू जैसी ऊँची हस्तियाँ भी थीं। उन्होंने उस अवसर पर कहा, "जिस वक्त तक हिंदुओं, मुसलमानों, सिखों और पारसियों में कामिल इत्तिहाद और इत्तिफाक न हो हम मुल्क को आजाद नहीं करा सकते और न पूरे अमन

अली बंधु छिंदवाड़ा में कैद थे। वे वहीं जाकर रहने लगीं। उस समय होमरूल आंदोलन चल पड़ा था। एनी बेसेंट नजरबंद कर दी गई थीं। देश में विरोधस्वरूप जनसभाएँ हो रही थी। ऐसी ही एक जनसभा की अध्यक्षता कर रहे सुब्रह्मण्यम अय्यर के नाम आया उनका एक पत्र उस सभा में पढ़ा गया। आखिर उस पत्र में ऐसा क्या था कि उसे सार्वजनिक महत्त्व मिला? वह पत्र खास था। बी. अम्मा ने एनी बेसेंट के लिए लिखा था, यह इज्जत सिर्फ उन्हीं लोगों को मयस्सर होती है जिनको खुदा मुल्क और मजहब की खातिर तकलीफ बर्दाश्त करने के लिए चुनता है

व बाइज्जत जिंदगी बसर कर सकते हैं।"[42] वे अधिक दिनों तक दुनिया में नहीं रह सकी। वह दौर हिंदू-मुस्लिम एकता का था। उनका निधन 1924 में हुआ। उनके निधन पर महात्मा गांधी ने लिखा, "वे हमेशा यही कहती रहती थीं कि मैं हिंदुस्तान में स्वराज्य और हिंदू-मुस्लिम एकता को देखना चाहती हूँ। जब तक हिंदू-मुसलमान एक होकर भाइयों की तरह नहीं रह सकते, आजादी नामुमकिन है। हम को अपने मजहब पर कायम रहते हुए एकता करनी चाहिए। जब तक ऐसा नहीं होगा हम गुलाम रहेंगे।"[43]

यहाँ यह यक्ष प्रश्न इतिहास में बना हुआ है कि अली बंधुओं ने क्या अपनी माता की इच्छा को ध्यान में रखा? इसे दो तरह से देखना चाहिए। उस समय का पूरा मुस्लिम नेतृत्व जिस खिलाफत को इस्लाम की रक्षा से जोड़ रहा था, वह ऐसी गहरी खाई में था कि उसे सूरज की रोशनी में घटित हो रही घटनाएँ भी दिख नहीं रही थीं। इसे बनवारी ने इस तरह लिखा है, "असहयोग अंदोलन में हिंदू-मुस्लिम साथ आ गए थे, लेकिन इस एकता का आधार मजबूत नहीं था। अंग्रेज यह बात समझते थे। इसलिए वे गांधीजी और मोहम्मद अली में दरार पड़ने की बाट जोह रहे थे।"[44] चौरीचौरा कांड ने 1922 में वह अवसर दे दिया। महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया। इसकी जैसी प्रतिक्रिया मुसलमानों में हुई, उसकी किसी को कल्पना नहीं थी। दंगे भड़क उठे। कोहाट के दंगे ने लाला लाजपत राय जैसे महान नेता को सोचने के लिए विवश किया। उन्होंने हिंदू-मुस्लिम संबंधों की जो पड़ताल की वह इतिहास का दस्तावेज बन गया है।[45]

वही मोड़ है, जहाँ प्रश्नों से प्रश्न निकलते जाते हैं। ब्रिटिश साम्राज्य विरोधी स्वाधीनता आंदोलन कमजोर पड़ने लगा। क्यों? यह प्रश्न जिस नेता ने उठाया, उसका नाम था, मुख्तार अहमद अंसारी। यह असाधारण नाम है। जिनका योगदान भी बड़ा है। उस अंसारी ने लिखा, "संपूर्ण हिंदू-मुस्लिम एकता, जो अभी तक पूरी तरह स्थापित हो जानी थी, आज नहीं है। अलग-अलग क्षेत्रों में सालों तक किया गया परिश्रम भी इस एकता को सामाजिक जीवन का एक अहम हिस्सा नहीं बना सका। यह आजकल के सांप्रदायिक तनाव को रोकने में भी असफल रहा है। यह तनाव ऐसा रोग है जिस पर लोगों ने ध्यान नहीं दिया है और आज यह भारतीय राष्ट्रवाद के अस्तित्व पर ही खतरा बन गया है।"[46]

लेकिन उसी मोड़ पर एक ध्रुव तारा भी है। पंडित रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाक उल्ला खां का साझा बलिदान स्वाधीनता आंदोलन के आकाश का अक्षुण्ण तारा है। जब मुस्लिम लीग की हवा थी, तब भी अब्दुल कयूम अंसारी जैसे नेता भी स्वाधीनता आंदोलन में थे। जिन्होंने राष्ट्रीयता की पगडंडी पकड़ी और उसे राजमार्ग बनाया। वे बुनकर समाज से थे। लेकिन मुसलमानों का अमीर तबका, जमीदार, सरकारी अफसर और नवाबों ने वह राह पकड़ी, जो सर सैयद अहमद खां ने दिखाई थी। उतना ही सच यह भी है कि स्वाधीनता आंदोलन में राष्ट्रीयता और लोकतांत्रिक मूल्यों की एक धारा थी। उसकी एक चमकदार परंपरा थी। उसके वाहक बदरुद्दीन तैयबजी, आर. एम. सयानी, हसरत मोहानी, महमूदाबाद के राजा, मजहरुल हक, अमर सुभानी, सैफुद्दीन किचुल, अबुल कलाम आजाद, हकीम अजमल खाँ, अली इमाम, प्रोफेसर अब्दुल बारी, रफी अहमद किदवई, अब्दुल माजिद ख्वाजा, मुजीबुर रहमान, खाँ अब्दुल गफ्फार खाँ, सैयद महमूद, आसिफ अली और तसद्दुक अहमद खाँ शेरवानी जैसे नेता थे और नायक भी थे।

फिर भी देश का विभाजन हुआ। इससे इन नेताओं की चमक धूमिल पड़ी। यह मान लिया गया कि दो राष्ट्र के सिद्धांत को प्रभावी तरीके से ये रोक नहीं सके। इतना ही नहीं मुस्लिम लीग का कोई व्यवहारिक विकल्प भी वे पेश नहीं कर सके। इसे जवाहरलाल नेहरू ने भी स्वीकार किया और लिखा कि 'एक वर्ग के रूप में राष्ट्रवादी मुसलमानों का कमजोर पड़ जाना और फिर लुप्त हो जाना एक दुखभरी कथा है।'[47] मुशीरुल हसन ने भी माना है कि "कांग्रेसी मुसलमानों के राजनैतिक सरोकारों का दायरा बहुत छोटा था।"[48] अली बंधुओं में शौकत अली ने भी अलग राह ले ली। उस समय सभी बड़े नेता यह समझते थे कि हिंदू-मुस्लिम विवाद सबसे बड़ी समस्या बनकर उभरी। लेकिन समाधान जो खोजा जा सका, वह समस्या को बढ़ाने वाला ही साबित हुआ।

कांग्रेस के मुस्लिम नेताओं की विफलता का एक इतिहास है। वहीं दूसरी तरफ नेताजी सुभाष चंद्र बोस और आजाद हिंद फौज ने सशस्त्र संघर्ष की आवाज बुलंद की। जिसमें हिंदू और मुस्लिम एक थे। यह जानने की बात है कि "जनाब आबिद हुसैन सफरानी साहब, जो भारत की विदेश सेवा में पंडित जवाहरलाल नेहरू की सिफारिश से नियुक्त हुए और आजाद हिंद फौज में सम्मिलित थे, उन्होंने ही 'जय हिंद' का नारा दिया।"[49] उस फौज में मुसलमानों की शहादत की सूची लंबी है।

उस समय की कुछ घटनाएँ इस समय याद करने लायक है। जैसे, कलकत्ता के ट्राम वे मजदूरों की ऐतिहासिक हड़ताल, जो 1946 में हुई। वह अकेली घटना नहीं है। एक सिलसिले की शुरुआत है। उसी कड़ी में मुंबई तथा कराची में 18 फरवरी, 1946 को नौसेना विद्रोह हुआ। उसने यह प्रमाणित कर दिया कि स्वतंत्रता को अंग्रेज टाल नहीं सकते। यही हुआ भी। लेकिन उससे बड़ी बात यह हुई कि उस विद्रोह में हिंदू-मुस्लिम का भेद मिट गया था। भारतीयता की भावना उफान ले रही थी। तभी तो "मुंबई के विद्रोह के प्रमुख नेताओं में

यहाँ यह यक्ष प्रश्न इतिहास में बना हुआ है कि अली बंधुओं ने क्या अपनी माता की इच्छा को ध्यान में रखा? इसे दो तरह से देखना चाहिए। उस समय का पूरा मुस्लिम नेतृत्व जिस खिलाफत को इस्लाम की रक्षा से जोड़ रहा था, वह ऐसी गहरी खाई में था कि उसे सूरज की रोशनी में घटित हो रही घटनाएँ भी दिख नहीं रही थीं। इसे बनवारी ने इस तरह लिखा है, असहयोग अंदोलन में हिंदू-मुस्लिम साथ आ गए थे, लेकिन इस एकता का आधार मजबूत नहीं था। अंग्रेज यह बात समझते थे। इसलिए वे गांधीजी और मोहम्मद अली में दरार पड़ने की बाट जोह रहे थे

से एक कर्नल खाँ थे जिन्होंने भारतीय जनता से अपने धार्मिक विश्वासों से ऊपर उठकर अपने बहादुराना संघर्ष में शामिल होने की अपील की। लाहौर के युवा छात्र नेता अनवर हुसैन ने 'बहादुर' नामक जहाज पर तिरंगा झंडा हाथों में लिए कराची के नौसेना विद्रोह के दौरान अपनी कुर्बानी दे दी।"[50] आजाद हिंद फौज विद्रोह के बाद देशभर में जनता का व्यापक उभार हुआ जिसकी परिणति 29 जुलाई, 1946 के डाक कर्मचारियों के अखिल भारतीय हड़ताल के रूप में हुई। तब क्रांति वातावरण में छाई हुई थी।

स्वाधीनता की भावना हिलोरे ले रही थी। तभी एक साजिश रची गई। उसका दिन 16 अगस्त, 1946 है। उसका नाम है, 'सीधी कार्रवाई।' क्या यह गजब आश्चर्य की बात नहीं है कि जिसे एक शांतिपूर्ण और व्यवस्थित विरोध प्रदर्शन होना था, वह एक शैतानी कत्लेआम में बदल गया। पूरे देश में हाहाकार मचा। तब देश था, अखंड। उस समय हर नेता असहाय दिखा। इतना ही नहीं हुआ, भारत विभाजन की साजिश सफल हुई। क्या उसका सच एक दिन सामने आएगा? अगर ऐसा हुआ, तो स्वाधीनता आंदोलन में मुसलमानों के सकारात्मक योगदान को अच्छी निगाह से देखने का एक सिलसिला शुरू होगा।

संदर्भ

1. आजादी का आंदोलन और भारतीय मुसलमान, शांतिमय रे, संन्यासियों और फकीरों का विद्रोह, पृष्ठ-1
2. भारतीय मुसलमान: इतिहास का संदर्भ, भाग-1, कर्मेंदु शिशिर, मुगल काल का पतन: उत्तर औरंगजेब (1707-1857), पृष्ठ-378
3. आधुनिक भारत में मुस्लिम राजनैतिक विचारक, एम.एस. जैन, 1857 से पहले का राजनैतिक चिंतन, पृष्ठ-4
4. इतिहास का मतांतर, मुबारक अली, मुगलों का पतन और उलमा, पृष्ठ-40
5. सांप्रदायिकता का ऐतिहासिक संदर्भ, प्रभा दीक्षित, मध्ययुगीन मुस्लिम समाज: अभिजात व सामान्य वर्ग, हिंदुओं के साथ उनका संबंध, पृष्ठ-22
6. आधुनिक भारत में मुस्लिम राजनैतिक विचारक, एम.एस. जैन, 1857 के पहले का राजनैतिक चिंतन, पृष्ठ-4
7. शाह वलीउल्लाह और उनकी सियासी तहरीक, मौलाना उबेदुल्ला सिंधी, पृष्ठ-70
8. आजादी का आंदोलन और भारतीय मुसलमान, शांतिमय रे, वहाबी विद्रोह (1820-1870), पृष्ठ-5
9. चिंगारी, एम.जे. अकबर, पृष्ठ-26
10. भारतीय मुसलमान: इतिहास का संदर्भ, भाग-1, कर्मेंदु शिशिर, मुगलकाल का पतन: उत्तर औरंगजेब, पृष्ठ-378
11. आधुनिक भारत में मुस्लिम राजनैतिक विचारक, एम.एस. जैन, 1857 से पूर्व का राजनैतिक चिंतन, पृष्ठ-8
12. वही, पृष्ठ-8
13. वही, पृष्ठ-8-9
14. वही, पृष्ठ-12
15. इतिहास का मतांतर, मुबारक अली, ब्रिटिश शासन के अंतर्गत मुसलमान, जेहाद आंदोलन, पृष्ठ-80
16. इतिहास का मतान्तर, मुबारक अली, ब्रिटिश शासन के अंतर्गत मुसलमान, पृष्ठ-78
17. सांप्रदायिकता का ऐतिहासिक संदर्भ, प्रभा दीक्षित, मध्ययुगीन मुस्लिम समाज: अभिजात व सामान्य वर्ग, पृष्ठ-6
18. भारतीय मुसलमान: इतिहास का संदर्भ, भाग-2, कर्मेंदु शिशिर, पृष्ठ-40
19. बगावत और वफादारी, नवजागरण के इर्द-गिर्द, वीर भारत तलवार, पृष्ठ-82
20. वही, पृष्ठ-125
21. वही, पृष्ठ-125
22. भारतीय मुसलमान: इतिहास का संदर्भ, भाग-2, कर्मेंदु शिशिर, पृष्ठ-42
23. बगावत और वफादारी, नवजागरण के इर्द-गिर्द, वीर भारत तलवार, पृष्ठ-106
24. वही, पृष्ठ-106
25. वही, पृष्ठ-106
26. वही, पृष्ठ-99
27. आधुनिक भारत में मुस्लिम राजनैतिक विचारक, एम.एस. जैन, सर सैयद अहमद खां और अलीगढ़ विचार पद्धति, पृष्ठ-28
28. वही, पृष्ठ-28
29. आजादी का आंदोलन और भारतीय मुसलमान, शांतिमय रे, राष्ट्रवाद के उभार का दौर, पृष्ठ-27-28
30. स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, डा. ताराचंद, खंड-3, पृष्ठ-178
31. आजादी का आंदोलन और भारतीय मुसलमान, शांतिमय रे, राष्ट्रवाद के उभार का दौर, पृष्ठ-28
32. स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, डा. ताराचंद, खंड-3, पृष्ठ-256
33. भारतीय मुसलमान: इतिहास का संदर्भ, भाग-2, कर्मेंदु शिशिर, पृष्ठ-81
34. आजादी का आंदोलन और भारतीय मुसलमान, शांतिमय रे, राष्ट्रवाद के उभार का दौर, पृष्ठ-32,33,34
35. विभाजन विरोधी कागजात, प्रवत गंगोपाध्याय, पृष्ठ-44
36. आजादी का आंदोलन और भारतीय मुसलमान, शांतिमय रे, राष्ट्रवाद के उभार का दौर, पृष्ठ-33
37. वही, पृष्ठ-33
38. वही, पृष्ठ-39
39. भारतीय मुसलमान: इतिहास का संदर्भ, भाग-2, कर्मेंदु शिशिर, मुस्लिम नवजागरण की महानेत्री: बी. अम्मा, पृष्ठ-151
40. भारत के स्वतंत्रता संग्राम में मुस्लिम महिलाओं का योगदान, डा. आबिदा समीउद्दीन, पृष्ठ-53
41. वही, पृष्ठ- 55
42. वही, पृष्ठ-102
43. वही, पृष्ठ-108-109
44. भारत का स्वराज्य और महात्मा गांधी, बनवारी, पहला सत्याग्रह, पृष्ठ-167
45. दी कलेक्टेड वर्क्स ऑफ लाला लाजपत राय, खंड-11, हिंदू-मुस्लिम यूनिटी, दी ट्रिब्यून-26 नवंबर-17 दिसंबर, 1924, पृष्ठ-135-185
46. आधुनिक भारत के निर्माता-मुख्तार अहमद अंसारी, मुशीरुल हसन, जले पर मरहम, पृष्ठ-88 (फाइल नंबर, 9, ए.आई.सी.सी.पेपर्स)
47. आत्मकथा, जवाहरलाल नेहरू, पृष्ठ-139
48. आधुनिक भारत के निर्माता-मुख्तार अहमद अंसारी, मुशीरुल हसन, सविनय अवज्ञा और उसके बाद, पृष्ठ-153
49. जंगे आजादी में मुस्लिम समाज, राघवशरण शर्मा और आदित्य, अध्याय-20, सुभाष चंद्र बोस और आजाद हिंद फौज, पृष्ठ-404
50. आजादी का आंदोलन और भारतीय मुसलमान, शांतिमय रे, राष्ट्रीय जनसंघर्ष और भारतीय मुसलमान, पृष्ठ-91

डॉ. फैयाज अहमद फैजी

द्विराष्ट्र सिद्धांत और उसका देशज प्रतिरोध

भारत में अंग्रेजों के आने के बाद सत्ता धीरे-धीरे मुस्लिम शासक वर्ग (अशराफ) के हाथों से निकलकर अंग्रेजों के हाथ में आने लगी। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक आते-आते अंग्रेजों ने पूरी तरह अपनी सत्ता सुदृढ़ कर ली। इन बदली हुई परिस्थितियों में मुस्लिम शासक वर्ग यानी अशराफ वर्ग ने अपनी सत्ता एवं वर्चस्व को बचाने के लिए पूर्ववर्ती नीतियों में बदलाव किया। इसी समय यूरोप में अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक की परिकल्पना उभार पर थी। अशराफ वर्ग ने इसी अल्पसंख्यकवाद, जिसे यूरोपीय स्वीकार्यता थी, की आड़ में मुस्लिम पहचान के आधार पर मुस्लिम सांप्रदायिकता की राजनीति को हवा देना प्रारंभ किया। इसके लिए उसने इस्लाम, मुस्लिम सभ्यता और मुसलमानों को बचाने के नाम पर शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुधार जैसे मोर्चों पर अपनी ओर से विकल्प देना शुरू कर दिया। इसमें मदरसा शिक्षा को आधुनिक शिक्षा के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया गया। जबकि यह केवल नमाज-रोजा-वजू जैसे शुद्ध धार्मिक क्रियाकलापों एवं कुरआन के लिपि पाठ तक ही सीमित थी, जिसे दीनी तालीम (धार्मिक शिक्षा) का नाम दिया गया। इसी आधार पर आधुनिक शिक्षा, साहित्य और विज्ञान को इस्लाम विरोधी बताकर प्रबल विरोध किया गया। दूसरी तरफ, अशराफ वर्ग ने अपनी नई पीढ़ी को विदेश भेजकर आधुनिक शिक्षा से परिचित कराया। यही नीति स्वास्थ्य और सामाजिक सुधार के मोर्चे पर भी क्रियान्वित की गई।

इस नीति की चपेट में सबसे ज्यादा वे लोग आए जिन्होंने कालांतर में किन्हीं कारणों से अपना मतांतरण करके मुस्लिम धर्म अपनाया था। वे कभी भी सत्ता और शासन के निकट नहीं रहे या उन्हें रहने नहीं दिया गया। इन्हें देशज पसमांदा मुस्लिम के नाम से जानते हैं, जिनकी जिंदगियों में मतांतरण का कोई विशेष लाभ दृष्टिगोचर नहीं होता है और ये मतांतरण के बाद भी अपनी मूल सभ्यता, संस्कृति, भाषा एवं सामाजिक संरचना से जुड़े हुए रहे। इसी कारण इसी समाज से इसका सबसे प्रबल विरोध भी पनपा।

इसी मजहबी सांप्रदायिक पहचान के आधार पर अंग्रेजी सरकार से तरह-तरह की माँगें मनवाई जाने लगीं। मदरसा शिक्षा और विभिन्न इस्लामी तहरीकों द्वारा इसी मुस्लिम सांप्रदायिकता को मजबूत किया जाने लगा। इसी परिदृश्य में द्विराष्ट्र सिद्धांत का जन्म हुआ। इसके अंतर्गत यह स्थापित किया गया कि मुसलमान स्वयं में एक अलग राष्ट्र हैं, इनकी सभ्यता-संस्कृति बिलकुल अलहदा है। इस विचार को मजबूती प्रदान करने वालो में सर सैयद, अल्लामा इकबाल, मौलाना अशरफ अली थानवी और मौलाना शब्बीर अहमद उस्मानी (जमीयतुल उलेमा के प्रमुख) आदि प्रमुख लोग थे। यही मानसिकता आगे चलकर मुस्लिम लीग के जन्म का आधार बनी। मुस्लिम लीग शुरू से ही सांप्रदायिक आधार पर भारतीय समाज के बँटवारे की पक्षधर रही। इसका ही परिणाम आगे चलकर देश के बँटवारे के रूप में सामने आया। वर्तमान समय में मुस्लिम विमर्श द्विराष्ट्र सिद्धांत का ही बदला हुआ रूप है। अशराफ मुसलमानों के नेतृत्व में मुस्लिम लीग को मुसलमानों के प्रतिरोध का भी सामना करना पड़ा। हालांकि कुछ अशराफ और अशराफी संगठन भी मुस्लिम लीग के द्विराष्ट्र सिद्धांत के विरोधी थे, लेकिन मुस्लिम लीग का सबसे प्रबल विरोध आसिम बिहारी के नेतृत्व वाली जमीयतुल मोमेनीन (मोमिन कॉन्फ्रेंस)

अपने को मुसलमानों का सबसे बड़ा पैरोकार बताने वाली मुस्लिम लीग के विरोध में कई कई मुस्लिम संगठन खड़े थे। इन्हीं में एक थी मोमिन कॉन्फ्रेंस

ने सांगठनिक रूप से किया। इसने अपनी कामगार (पेशावर) देशी पहचान को आगे रखते हुए मुस्लिम लीग के लिए लगभग हर मोर्चे पर प्रतिरोध खड़ा किया। मोमिन कॉन्फ्रेंस के सक्रिय कार्यकर्ता एवं संगठन की पत्रिका 'मोमिन अंसार' के संपादक मौलाना इमामुद्दीन रामनगरी (वाराणसी) द्वारा कुरआन का प्रथम हिंदी अनुवाद भी इसी सोच के तहत किया गया था ताकि देशज पसमांदा स्वयं कुरआन को पढ़-समझ सके और मुस्लिम लीग के बहकावे में न आए।[1]

मोमिन कॉन्फ्रेंस द्वारा न सिर्फ संगठन के स्तर पर, बल्कि उसके द्वारा निकाले जाने वाले पत्र और पत्रिकाओं द्वारा भी मुस्लिम लीग के राष्ट्र विरोधी चरित्र को उजागर किया जा रहा था। संगठन द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक पत्रिका 'मोमिन गजट' में पत्रिका के संपादक मौलाना अबु उमर भागलपुरी ने अपने संपादकीय (1937ई०) में मुस्लिम लीग के चरित्र को परिभाषित करते हुए लिखा - "लीग एक ऐसा बलिगृह है जहाँ हवस और स्वार्थ पर गरीबों की बलि दी जाती है। लीग वो संगे तराजू है जो सौदे के वक्त किसी पलड़े पे झुक पड़ेगी। लीग एक सियासी डिक्शनरी है जिसमें हर किस्म के कमजोर शब्दों का भंडार है। लीग एक कवि है जो आकाओं की प्रसंशा में सुंदर प्रसंशा गीत गा सकता है। लीग पूँजीवादी और उच्च वर्ग का स्टेज है जहाँ स्वार्थ और नफ्सपरस्ती पर बहस होती है। लीग संपन्न वर्ग और राजतंत्र का अनुवादक है जिनकी एकता से देश की गुलामी में तरक्की होती है। लीग एक ऐसी अभिनेत्री है जो अनुभवहीन दर्शकों के दिलों को अपनी तरफ खींच सकती है। लीग आजादी और गुलामी का च्यवनप्राश है जो पूँजीपतियों के दिलों को ताकत पहुँचाकर हवस और स्वार्थ की भूख पैदा कर सकती है।"[2]

मुस्लिम लीग द्वारा सांप्रदायिक आधार पर जनगणना में जाति के कॉलम में सिर्फ मुस्लिम लिखवाने की अपील का मोमिन कॉन्फ्रेंस ने पुरजोर विरोध किया।[3] महिला प्रभाग, जिला मोमिन कॉन्फ्रेंस के 19 जनवरी 1941 को खीरगाँव, हजारीबाग में हुए सम्मेलन में बेगम मोईना गौस ने अपने स्वागत भाषण में इस ओर ध्यान दिलाते हुए कहा कि मुस्लिम लीग के कार्यकर्ता पसमांदा मुस्लिमों को बहका रहे हैं कि वे जनगणना में अपनी जाति का नाम न लिखवाएँ। इसके लिए वे बंगाल सरकार के एक फर्जी सर्कुलर और बिहार के जनगणना विभाग द्वारा 689 रुपये जमा कराने की बात का झूठा प्रचार कर रहे हैं। उन्होंने यह भी बताया कि दिसंबर 1940 के अखबारों में बिहार मुस्लिम लीग की वर्किंग कमेटी के नामजद मेंबरों के नाम उनकी जाति के नाम के साथ प्रकाशित किए गए, लेकिन मोमिनों (पसमांदा मुस्लिमों) के अपनी जाति बताने पर क्रोध प्रकट किया गया।[4]

जब 30 मार्च 1940 को लाहौर में हुए अपने अधिवेशन में मुस्लिम लीग ने 'पाकिस्तान' के प्रस्ताव को पारित कर दिया। तब इसके विरोध में सबसे संगठित, तार्किक, सधा और गरजदार आवाज मोमिन नौजवान कॉन्फ्रेंस (मोमिन कॉन्फ्रेंस की नवयुवक शाखा) ने अपने 19 अप्रैल 1940 को पटना में हुए अधिवेशन में उठाया।[5] उसके बाद की तिथियों में भी विभिन्न अधिवेशनों में मोमिन कॉन्फ्रेंस ने यह एलान किया कि पूरा समाज इसका जी जान से विरोध करेगा।[6]

संगठन ने मई 1940 में दिल्ली में एक विशाल प्रदर्शन का आयोजन किया जिसमें लगभग 40 हजार पसमांदा मुसलमानों ने भाग लेकर देश के बटवारे के विरोध में अपनी मजबूत आवाज बुलंद की।[7] मोमिन कॉन्फ्रेंस का यह तर्क था कि मुस्लिम लीग का यह कहना कि इस्लाम खतरे में हैं सिर्फ बहकाने की एक चाल भर है। जैसा कि नाजीमुद्दीन इलाहाबादी ने पटना की एक मीटिंग में कहा था कि मुस्लिम लीग की लीडरशिप खतरे में है, न कि इस्लाम।[8]

अब्दुल कय्यूम अंसारी के अनुसार पाकिस्तान योजना 'इस्लाम की सच्ची अवधारणा' के विपरीत थी। सांस्कृतिक असमानता का तर्क, जिसे मुस्लिम लीग ने द्विराष्ट्र सिद्धांत का आधार बनाया, अंतर-सामुदायिक सह-अस्तित्व के क्षेत्रीय ढाँचे को प्रतिबिंबित नहीं करता था। उन्होंने प्रश्न किया कि आखिर भारतीय मुसलमानों की अरब और तुर्की के मुसलमानों के साथ क्या समानता है? बंगाल के मुसलमानों में उत्तर पश्चिम सीमांत प्रांत के अपने सहधर्मियों की तुलना में अपने क्षेत्र के हिंदुओं के साथ अधिक समानता है। आसिम बिहारी के अनुसार पसमांदा मुसलमानों को किसी भी प्रकार का धार्मिक, भाषाई या सांस्कृतिक भय नहीं है। वे जहाँ रहते हैं वही स्थान उनके लिए पवित्र है, पाकिस्तान (पाक - पवित्र, स्तान - स्थान) है। पटना सिटी में अखिल भारतीय मोमिन युवा सम्मेलन में मुहम्मद नूर ने पाकिस्तान योजना को 'गैर-इस्लामिक, अप्राकृतिक, देशभक्तिरहित और बिलकुल अव्यावहारिक' बताया। चूँकि देश में रहने वाले समुदाय एक-दूसरे के साथ सह-अस्तित्व के भाव से रहते हैं, इसलिए उनका मत था कि भारत के विभाजन की बात ही बेतुकी है।[9]

गोरखपुर में 1939 में हुए मोमिन कॉन्फ्रेंस के अधिवेशन के दौरान लिया गया एक दुर्लभ चित्र

साभार : https://twocircles.net/2013jun05/forgotten_saga_momin_conference.html

गोरखपुर में अखिल भारतीय मोमिन कॉन्फ्रेंस के सातवें वार्षिक अधिवेशन [27 से 29 दिसंबर 1939], में मुहम्मद नूर ने एक प्रस्ताव पेश किया कि देश का भावी संविधान केवल वयस्क मताधिकार पर आधारित संविधान सभा द्वारा बनाया जाना चाहिए, जिसमें मोमिनों (पसमांदा) के लिए एक अलग निर्वाचन क्षेत्र हो। अलग पसमांदा निर्वाचन क्षेत्र की माँग इस आधार पर की गई थी कि तत्कालीन मताधिकार के आधार पर तैयार की गई मतदाता सूची संपत्ति, कर-भुगतान और शैक्षिक योग्यता पर आधारित थी, जिससे सिर्फ मुस्लिम लीगी अशराफ मुसलमानों के हितों का संरक्षण होता था। दूसरे शब्दों में, मताधिकार की मौजूदा प्रणाली 'मुसलमानों के बीच अल्पमत (अशराफ) को बहुमत में बदलकर' लोकतंत्र के सिद्धांत के विरुद्ध काम कर रही है।[10]

मोमिन कॉन्फ्रेंस रजील-अशरफ विभाजन के तथ्य के आधार पर मुस्लिम लीग का विरोध कर रहा था लेकिन मुस्लिम लीग के लिए रजील श्रेणी जैसी किसी चीज से इनकार करना आम बात थी। इस प्रकार, एक अवसर पर, विधान सभा में नगरपालिका संशोधन विधेयक पर बहस के दौरान कांग्रेस पार्टी के पसमांदा नेता हाफिज जफर हुसैन ने स्थानीय निकाय चुनावो में संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र को यह कहते हुए समर्थन दिया कि पृथक चुनाव क्षेत्र में केवल अमीर मुस्लिम ही चुनाव जीत पाते हैं जो अपने सहधर्मी गरीब मुसलमानों पर अत्याचार करते हैं। जिस पर मुस्लिम इंडिपेंडेंट पार्टी के मुहम्मद यूनुस, जिन्हें इमारत ए शरिया और जमीयतुल उलेमा का समर्थन था, ने हस्तक्षेप करते हुए कहा कि मुस्लिम समाज में उच्च वर्ग और निम्न वर्ग जैसी कोई चीज नहीं होती, सारे मुसलमान बराबर हैं। यह कांग्रेस सरकार है जो व्यवस्थित रूप से एक काल्पनिक विभाजन का अतिशय वर्णन कर मुस्लिम समाज में जातिवाद को बढ़ावा दे रही है।

इसके कुछ ही महीने बाद पसमांदा नेता मुहम्मद नूर द्वारा मुसलमानों के पिछड़े वर्ग के उत्थान के लिए एक योजना तैयार करने के उद्देश्य से कांग्रेस सरकार से आग्रह संबंधी एक प्रस्ताव लाया गया, जिस पर कांग्रेस के शाह मुहम्मद ओमैर ने दृढ़ता से कहा कि मुसलमानों में कोई पिछड़ा वर्ग नहीं है। वे यह तो स्वीकार करने को तैयार थे कि कुछ बुनकरों और मंसूरियों की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय है, लेकिन उन्होंने दावा किया कि वे किसी भी सामाजिक पिछड़ेपन से पीड़ित नहीं हैं और उन्हें इस आधार पर सहायता की आवश्यकता नहीं है।[11]

मोमिन कॉन्फ्रेंस ने मुस्लिम लीग के एकरूपता वाले नेतृत्व को उखाड़ फेंकने के लिए अन्य पिछड़े मुस्लिम संगठनों को इस आधार पर एकत्रित करना शुरू किया कि मोमिन और अन्य पेशावर (कामगार) मुसलमानों को मुस्लिम लीग ने पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया था। इसलिए किसी को भी मुस्लिम लीग पर कोई भरोसा नहीं है। तब मोमिन आंदोलन का उद्देश्य न केवल मोमिनों, बल्कि राईन (सब्जी विक्रेता और उत्पादक), मंसूरी (कपास, रूई धुनने वाले) इदरीसी (दर्जी) और कुरैशी (कसाई) समुदाय आदि का भी उत्थान करना था। अखिल भारतीय मोमिन कॉन्फ्रेंस के अध्यक्ष जहीरुद्दीन ने रेखांकित किया कि संगठन वंचित मुस्लिम वर्गों (देशज पसमांदा) के लिए हिंदू अनुसूचित जाति की तरह कुछ सुविधाएँ प्राप्त कर लेगा।[12]

दिल्ली में 26 अप्रैल 1943 को मोमिन कॉन्फ्रेंस की वर्किंग कमेटी की एक बैठक हुई। इस बैठक में संगठन के अध्यक्ष मुहम्मद जहीरुद्दीन एडवोकेट ने मोमिन कॉन्फ्रेंस को गरीब, पीड़ित और पसमांदा तबके की देशभक्ति की बेपनाह भावना का प्रतिबिंब कहा। साथ ही उसे सांगठनिक प्रयास का प्रतीक और भारतीय मुसलमानों की वैभवशाली राजनैतिक क्रांति का सबूत बताया। उन्होंने मुस्लिम लीग पर तीखा प्रहार करते हुए फर्जी और झूठी मजहबी एकता के नाम पर पसमांदा मुसलमानों के साथ सियासी यतीमों (अनाथों) जैसा बर्ताव किए जाने और खिलौने की तरह जेरे इकतादार (सत्ता के अंतर्गत) रखने की उनकी धोखेबाजी वाली सियासत की भी पोल खोली। उन्होंने जातिवादी विचाधारा से ग्रसित मुस्लिम लीडरशिप को भी लताड़ा।[13]

मुस्लिम लीग के उपाध्यक्ष रजा अली ने कांग्रेस की पिछड़े वर्ग की भर्ती की नीति की आलोचना करते हुए मजाक उड़ाया कि, "वह सरकार कितनी महान और शक्तिशाली होगी जिसके फील्ड मार्शल, जनरल और कर्नल नट, कुंजड़े, हलखोर और डोम होंगे"। इसके विरोध में जमीयतुल राईन (राईन कॉन्फ्रेंस- पसमांदा कुंजडा जाति का संगठन) के अब्दुस-समद ने असर-ए-जदीद (आधुनिक काल) के संपादक को, जिसमें यह रिपोर्ट छपी थी, प्रत्युत्तर में लिखा कि यह मुस्लिम लीग की उस मानसिकता का सूचक है जिसके तहत वह पसमांदा वर्ग को उस विशेषाधिकार से वंचित करना चाहता है जिसका लाभ वह स्वयं उठा रहा है।[14]

उस समय मुस्लिम लीग के विरोध में अधिकतर बुनकर (जुलाहा) जाति के देशज पसमांदा मुखर थे। इसीलिए मुस्लिम लीगी मानसिकता वाले अशराफ तबके ने मोमिन कॉन्फ्रेंस और इसके नेताओं पर तरह-तरह के आरोप लगाना तथा उन्हें धार्मिक फतवे जारी करवाकर और पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखकर बदनाम करना शुरू किया। यहाँ तक कि बुनकर जाति का चरित्र हनन करने वाला 'जुलाहा नामा' (लेखक-काजी तलम्मुज हुसैन गोरखपुरी) एवं 'फितना-ए-जुलाहा' (लेखक- हामिद हुसैन सिद्दीकी इलाहाबादी) भी प्रकाशित किया गया।[15] मोमिन कॉन्फ्रेंस ने कांग्रेस पार्टी से बराबर यह माँग की कि जब भी मुसलमानों से संबंधित कोई फैसला हो तो मोमिन कॉन्फ्रेंस के प्रतिनिधियों को उसमें शामिल किया जाना चाहिए। आल इंडिया मोमिन कॉन्फ्रेंस के उपाध्यक्ष अब्दुल कय्यूम अंसारी ने आरा (बिहार) से 9 अक्टूबर 1939 को कांग्रेस के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद को टेलिग्राम भेजकर कहा, "मोमिन कॉन्फ्रेंस अखबारों में प्रकाशित कांग्रेस-लीग समझौता संबंधी खबरों के खिलाफ चेतावनी देती है।" मोमिन कॉन्फ्रेंस मुस्लिम लीग को अपने नेतृत्व की मान्यता नहीं देती है। डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने 13 अक्टूबर 1939 को वर्धा से उक्त टेलिग्राम का जवाब देते हुए लिखा- "किसी समझौते का प्रस्ताव नहीं है। इसलिए इसका सवाल नहीं उठता।" इसके बावजूद गांधी जी मुस्लिम लीग को मुसलमानों का सबसे शक्तिशाली संगठन और जिन्ना को सारे मुसलमानों का

प्रतिनिधि मानते हुए उनसे मिले।[16]

बाद में हुई ऐतिहासिक कांग्रेस-लीग समझौता-वार्ता में मोमिन कॉन्फ्रेंस के प्रतिनिधियों को आमंत्रित भी नहीं किया गया। मोमिन कॉन्फ्रेंस की माँगों की उपेक्षा ने मुस्लिम लीग को राजनैतिक क्षितिज पर एक सांप्रदायिक संगठन के रूप में उभरने का मौका दिया, जो देश की एकता के लिए घातक सिद्ध हुआ।"[17] इन्हीं संघर्षों के बीच 1946 का चुनाव आया, जो पृथक निर्वाचन के आधार पर हुआ। इस चुनाव को पाकिस्तान के लिए जनमत संग्रह के रूप में देखा गया। इस चुनाव में मोमिन कॉन्फ्रेंस ने सर्वसम्मति से कांग्रेस के साथ चुनाव लड़ने का फैसला किया।[18]

यहाँ यह स्पष्ट रहे कि उस समय चुनाव में आज की तरह वयस्क मताधिकार नहीं था, बल्कि शिक्षित लोगों (किसी राज्य में आठवी पास, तो किसी में हाई स्कूल पास), वार्षिक टैक्स देने वालों (किसी राज्य में 50 रुपए तो किसी राज्य में 60 रुपए और किसी में 150 रुपए) तथा सवा रुपया चौकीदारी टैक्स अदा करने वालों को ही वोट देने का अधिकार दिया गया। इस प्रकार देश की कुल आबादी का केवल 13 प्रतिशत भाग ही वोटर था और बिहार राज्य में यह संख्या लगभग 7.8 प्रतिशत के आसपास थी।[19] इस प्रकार देशज पसमांदा समाज के पास अपने प्रतिद्वंद्वी अशराफ की तुलना में चुनाव लड़ने और वोट देने वालों की संख्या बहुत ही कम थी। इस चुनाव में अन्य पसमांदा जातिगत संगठनों ने पूरी तरह मोमिन कॉन्फ्रेंस के नेतृत्व में चुनाव लड़ने का फैसला किया।[20]

यह चुनाव सांप्रदायिक दंगे के बाद का था जिसका सीधा फायदा मुस्लिम लीग को हुआ। चुनाव के दौरान मुस्लिम लीग ने पसमांदा समाज को अपने पक्ष में भ्रमित करने के लिए 12 पन्ने का एक बुकलेट निकाला था जिसमें प्रमुख बिंदु इस प्रकार थे.. "मुस्लिम लीग से अलग होना, मोमिन आंदोलन की दीन (मजहब) और दुनिया दोनों बरबाद कर देगा। हिंदू कांग्रेस, और कांग्रेसी टोलियाँ हिंदू रामराज्य के लिए काम कर रही हैं जिसमें सबसे पहले देहात के पसमांदा मुसलमानों की शुद्धि की जाएगी। आपका पेशा बरबाद हो जाएगा। दस करोड़ मुसलमानों की पंचायत मुस्लिम लीग है और मुस्लिम लीग का समर्थन करना आपका धार्मिक कर्तव्य है। सवाल शैख, मोमिन, राईन आदि जाति का नहीं, बल्कि इस्लाम की जिंदगी और मौत का है। भाइयों उठो मुस्लिम लीग का समर्थन करो, और अपने पूर्वजों अंसारे मदीना की सुन्नत जिंदा कीजिए। उन्होंने दुनिया में पहला पाकिस्तान कायम किया और आप दूसरा पाकिस्तान कायम करें।[21]

इसके जवाब में अब्दुल कय्यूम अंसारी अपने भाषणों में बगुला भगत वाला किस्सा सुनाकर द्विराष्ट्र सिद्धांत के खतरों से लोगों को आगह करते थे। किस्सा यह कि एक बगुला था। उसने जंगल में स्थित एक तालाब की मछलियों को यह कहकर डराया कि जल्द इस तालाब का पानी सूखने वाला है इसलिए सभी मछलियों का बेमौत मारा जाना तय है। उसने डरी हुई मछलियों को एक-एक कर पहाड़ पर स्थित एक तालाब में पहुँचा देने का आश्वासन दिया। मछलियों की राय से यह सिलसिला शुरू भी हो गया। इसी बीच तालाब के एक केकड़े को संदेह हुआ और उसने बगुले से कहा कि इस बार मेरा नंबर है मुझे पहाड़ पर चलने दो। केकड़ा बगुले की पीठ पर सवार हुआ। बगुला केकड़े को लेकर पहाड़ पर उतरने ही वाला था कि कुछ ऊपर से ही केकड़े ने देखा कि यहाँ तो कोई तालाब नहीं है। उलटे उसे पहाड़ की चट्टानों पर कुछ मछलियों के अस्थिपंजर दिखाई पड़े। उसे समझते देर नहीं लगी कि बगुला भगत मछलियों को मूर्ख बना रहे हैं और उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने के नाम पर उनका भक्षण कर रहे हैं। लिहाजा केकड़े ने फौरन बगुला भगत की गर्दन अपने पंजे से दबा दी, जिससे बगुला भगत छटपटा कर मर गए। यह किस्सा सुनाते हुए अंसारी साहब मुस्लिम लीग को बगुला भगत तथा मोमिन कॉन्फ्रेंस को केकड़े की संज्ञा देते थे।[22] मुस्लिम लीग के मुखर विरोध के लिए हिंदू महासभा बिहार के अध्यक्ष ने अब्दुल कय्यूम अंसारी, अब्दुल जलील और नूर मुहम्मद की प्रशंसा भी की थी। ये तीनों ही मोमिन कान्फ्रेंस के कार्यकर्ता थे।[23]

यूँ तो पूरे देश में मोमिन कॉन्फ्रेंस ने मुस्लिम लीग को चुनौती दी लेकिन बिहार प्रदेश में मोमिन कॉन्फ्रेंस का प्रदर्शन सबसे अच्छा रहा। पृथक निर्वाचन के तहत कुल 40 सीटें थीं जिसमें मोमिन कॉन्फ्रेंस ने 20 और कांग्रेस ने 10 सीटों पर अपने-अपने उम्मीदवार उतारे। इस चुनाव में मुस्लिम लीग के विरोध वाली अन्य अशराफ पार्टियों का सूपड़ा साफ हो गया अर्थात लगभग पूरे अशराफ वर्ग ने मुस्लिम लीग और पाकिस्तान के पक्ष में मतदान किया। मोमिन कॉन्फ्रेंस ने 6 सीटों पर कामयाबी हासिल की और कांग्रेस केवल एक सीट ही जीत पाई, जबकि मुस्लिम लीग के हिस्से 33 सीटें आई।[24]

मोमिन कॉन्फ्रेंस के हाफिज मंजूर को पहले पराजित घोषित किया गया था, लेकिन बाद में उनकी शिकायत पर दुबारा मतगणना कराई गई जिसमें वो विजयी रहे। मुस्लिम लीग के भय के कारण हाफिज मंजूर का पोलिंग एजेंट बनने तक को कोई तैयार नहीं था। ऐसी सूरत में एक हिंदू नौजवान इंद्र कुमार (आजादी के बाद आप 1986 तक बिहार विधान परिषद एवं 1997 से 2008

मोमिन कॉन्फ्रेंस के हाफिज मंजूर को पहले पराजित घोषित किया गया था, लेकिन बाद में उनकी शिकायत पर दुबारा मतगणना कराई गई जिसमें वो विजयी रहे। मुस्लिम लीग के भय के कारण हाफिज मंजूर का पोलिंग एजेंट बनने तक को कोई तैयार नहीं था। ऐसी सूरत में एक हिंदू नौजवान इंद्र कुमार आगे आए और हाफिज जी के मजबूत पोलिंग एजेंट बने। इस पर भी मुस्लिम लीग ने अधिकारियों से शिकायत की कि पृथक निर्वाचन के अंतर्गत मुस्लिम सीट पर एक हिंदू किसी का पोलिंग एजेंट कैसे बन सकता है। शिकायत खारिज कर दी गई। इस पर मुस्लिम लीग ने व्यंग्य किया कि देखिए इनको एक मुसलमान पोलिंग एजेंट बनाने तक को नहीं मिल रहा है

तक बिहार राज्य पिछड़ा वर्ग आयोग के सदस्य रहे') आगे आए और हाफिज जी के मजबूत पोलिंग एजेंट बने। इस पर भी मुस्लिम लीग ने अधिकारियों से शिकायत की कि पृथक निर्वाचन के अंतर्गत मुस्लिम सीट पर एक हिंदू किसी का पोलिंग एजेंट कैसे बन सकता है। शिकायत खारिज कर दी गई। इस पर मुस्लिम लीग ने व्यंग्य किया कि देखिए इनको एक मुसलमान पोलिंग एजेंट बनाने तक को नहीं मिल रहा है।[25]

गौरतलब है कि जिस अशराफ वर्ग ने पाकिस्तान के समर्थन में वोट किया, कांग्रेस ने उसे अपनी सरकार में उसकी संख्या के अनुपात से कहीं अधिक भागीदारी दी और जिस पसमांदा समाज ने पूरी तरह द्विराष्ट्र सिद्धांत को नकारकर चुनाव में जीत दर्ज कराई, कांग्रेस के राष्ट्रवादी नेताओं द्वारा उनकी उपेक्षा की गई। वह तो भला हो सरदार पटेल का जिनके प्रयास से बिहार राज्य में अब्दुल कय्यूम अंसारी कैबिनेट मंत्री और मुहम्मद नूर पार्लियामेंट्री सेक्रेटरी बनाए गए।[26] हालांकि यह पसमांदा की आबादी के हिसाब से कम प्रतिनिधित्व था लेकिन फिर भी यह एक सार्थक पहल थी।

आसिम बिहारी के आंदोलन ने राष्ट्र जागरण के नाम पर मुस्लिम जमींदारों के संगठन मुस्लिम लीग के साथ अंतिम समय तक पूरी शक्ति से संघर्ष किया। लेकिन राष्ट्रीय आंदोलन के पूँजीवादी नेताओं की परंपरागत समझौतेबाजी ने आम लोगों के बजाय विदेशी साम्राज्यवादियों और जागीरदारों से समझौता करके जिस ऐतिहासिक अशिष्टता का सबूत दिया है, उसका फैसला आने वाली पीढ़ी करेगी।

कोई भी ईमानदार इतिहासकार भारत की आजादी में आसिम बिहारी के मोमिन आंदोलन की स्वस्थ भूमिका को नजरअंदाज करने की हिम्मत नहीं कर सकता।[27]

संदर्भ-

1. खुर्शीद अनवार आरफी, 'मोमिन तहरीक' (उर्दू) (2016) एजुकेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली-6, ISBN 978-93-86285-32-4 पृ.111
2. प्रो. अहमद सज्जाद, 'बन्दये मोमिन का हाथ' (उर्दू) (2011) रिसर्च एंड पब्लिकेशन डिवीजन मरकज-ए-अदब-व -साइंस, रांची ISBN: 978-93-81029-11 -4, पृ. 369
3. पापिया घोष, 'मुहाजिर्स ऐंड द नेशन: बिहार इन द 1940ज' (2018) राउटलेज इंडिया ISBN 9781138380349, पृ. 65
4. प्रो. अहमद सज्जाद, 'बन्दये मोमिन का हाथ' (उर्दू) (2011) रिसर्च एंड पब्लिकेशन डिवीजन मरकज-ए-अदब-व-साइंस, रांची ISBN:978-93-81029-11-4, पृ.498
5. वही, पृ. 497
6. पापिया घोष, 'मुहाजिर्स ऐंड द नेशन: बिहार इन द 1940ज' (2018) राउटलेज इंडिया ISBN 9781138380349 पृ. 92
7. अली अनवर, मासावत की जंग (हिंदी) (2001) वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली-2, पृ. 111
8. द सर्चलाइट, 24 अप्रैल 1940
9. पापिया घोष, 'मुहाजिर्स ऐंड द नेशन: बिहार इन द 1940ज' (2018) राउटलेज इंडिया ISBN 9781138380349, पृ. 93
10. पापिया घोष, 'मुहाजिर्स ऐंड द नेशन: बिहार इन द 1940ज' (2018) राउटलेज इंडिया ISBN 9781138380349, पृ. 137
11. पापिया घोष, 'मुहाजिर्स ऐंड द नेशन: बिहार इन द 1940ज' (2018) राउटलेज इंडिया ISBN 9781138380349, पृ. 98
12. पापिया घोष, 'मुहाजिर्स ऐंड द नेशन: बिहार इन द 1940ज' (2018) राउटलेज इंडिया ISBN 9781138380349, पृ. 103
13. प्रो. अहमद सज्जाद, 'बन्दये मोमिन का हाथ' (उर्दू) (2011) रिसर्च एंड पब्लिकेशन डिवीजन मरकज-ए-अदब-व -साइंस, रांची ISBN: 978-93-81029-11-4,पृ. 514
14. पापिया घोष, 'मुहाजिर्स ऐंड द नेशन: बिहार इन द 1940ज' (2018) राउटलेज इंडिया ISBN 9781138380349, पृ. 104
15. प्रो. अहमद सज्जाद, 'बन्दये मोमिन का हाथ' (उर्दू) (2011) रिसर्च एंड पब्लिकेशन डिवीजन मरकज-ए-अदब-व-साइंस,रांची ISBN: 978-93-81029-11-4, पृ. 500
16. प्यारे लाल, महात्मा गांधी: द लास्ट फेज' (1856), मुद्रक एवं प्रकाशक : जितेंद्र टी. देसाई, नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद - 380014 भारत, पृ. 111
17. अली अनवर, मासावत की जंग (हिंदी) (2001) वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली-2, पृ. 111
18. प्रो. अहमद सज्जाद, 'बन्दये मोमिन का हाथ' (उर्दू) (2011) रिसर्च एंड पब्लिकेशन डिवीजन मरकज-ए-अदब-व -साइंस, रांची ISBN: 978-93-81029-11-4, पृ. 571
19. पापिया घोष, 'मुहाजिर्स ऐंड द नेशन: बिहार इन द 1940ज' (2018) राउटलेज इंडिया ISBN 9781138380349 पृ. 79; तथा अली अनवर, मासावत की जंग (हिंदी) (2001) वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली-2, पृ.117
20. पापिया घोष, 'मुहाजिर्स ऐंड द नेशन: बिहार इन द 1940ज' (2018) राउटलेज इंडिया ISBN 9781138380349, पृ. 105
21. प्रो. अहमद सज्जाद, 'बन्दये मोमिन का हाथ' (उर्दू) (2011) रिसर्च एंड पब्लिकेशन डिवीजन मरकज-ए-अदब-व -साइंस, रांची ISBN: 978-93-81029-11-4, पृ. 544
22. अली अनवर, मासावत की जंग (हिंदी) (2001) वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली-2, पृ. 116
23. पापिया घोष, द स्टार ऑफ इंडिया, 28 अप्रैल 1941, पृ. 63 पापिया घोष, 'मुहाजिर्स ऐंड द नेशन: बिहार इन द 1940ज' (2018) राउटलेज इंडिया ISBN 9781138380349 पृ. 107; तथा अली अनवर, मासावत की जंग (हिंदी) (2001) वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली-2, पृ. 114-16
24. अली अनवर, मासावत की जंग (हिंदी) (2001) वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली-2, पृ. 118-19
25. खुर्शीद अनवार आरफी, 'मोमिन तहरीक' (उर्दू) (2016) एजुकेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली-6, ISBN 978-93-86285-32-4 पृ. 139
26. अली अनवर, मासावत की जंग (हिंदी) (2001) वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली-2, पृ. 581

मदनलाल वर्मा 'क्रांत'

क्रांति के सृजनधर्मी विचारक बिस्मिल

स्वतंत्रता संघर्ष की क्रांतिकारी धारा के अग्रदूतों में पंडित रामप्रसाद बिस्मिल का नाम बड़े सम्मान से लिया जाता है। क्रांति के विचार को मूर्त रूप देने वाले बिस्मिल एक गंभीर विचारक, सिद्धहस्त लेखक और भावुक कवि भी थे। अशफाक के वह मित्र और गुरु दोनों रहे हैं। बिस्मिल जी के जीवन का एक लेखा-जोखा

बीसवीं सदी के महान् क्रांतिकारी पंडित रामप्रसाद 'बिस्मिल' का जन्म ज्येष्ठ सुदी निर्जला एकादशी संवत् 1954 (11 जून 1897) को शाहजहाँपुर (उ.प्र.) के खिरनीबाग मोहल्ले में मुरलीधर के यहाँ हुआ था। उनके दादाजी नारायणलाल मुरैना जिले के बरबाई गाँव में रहते थे। कालांतर में पारिवारिक कलह के कारण वे अपनी जन्मभूमि छोड़कर परिवार सहित शाहजहाँपुर आकर बस गए थे। उनके दादाजी रेजगारी तथा पिताजी स्टांप बेचने का व्यवसाय करते थे। बिस्मिल की माँ मूलमती के कुल दस बच्चे हुए जिनमें रामप्रसाद दूसरी संतान थे। जन्म के समय नक्षत्रों की गणना करके तथा दोनों हाथों में दस चक्रों के निशान देखकर किसी ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की थी कि यह बालक बड़ा होकर सम्राट बनेगा।

सात वर्ष की आयु में रामप्रसाद को मकतब में पढ़ने भेजा गया। साथी मुस्लिम विद्यार्थियों की कुसंगति से वह बुरी आदतों का शिकार हो गया। इसी कारण उर्दू मिडिल में दो बार फेल हुआ। जुलाई 1911 में पिता ने उसे मिशन स्कूल में अंग्रेजी की पाँचवीं कक्षा में दाखिल करा दिया। वहाँ सुशीलचंद्र सेन नामक एक बंगाली नवयुवक की सत्संगति से उसकी धूम्रपान की आदत छूट गई। घर के पड़ोस में एक मन्दिर था, रामप्रसाद वहाँ जाकर पूजा-पाठ में समय व्यतीत करने लगा। वहीं उसकी भेंट मुंशी इंद्रजीत से हुई। वे उसे आर्य समाज ले गए। उन्होंने उसे संध्या करना सिखाया तथा 'सत्यार्थ प्रकाश' पुस्तक पढ़ने को दी। सत्यार्थ प्रकाश पढ़कर तो उसका जीवन ही बदल गया। उसने स्वामी दयानंद को अपना आदर्श मानते हुए अखंड ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया। भोजन में उसने नमक तक खाना छोड़ दिया। नियमित रूप से योग तथा व्यायाम करने के परिणामस्वरूप उसके मुखमंडल पर अलौकिक तेजस्विता आ गई। सब लोग उसे आश्चर्य से देखने लगे। अब वह पढ़ने में भी तेज हो गया था।

सन् 1913 में सोलह वर्ष की आयु में उसने आर्य समाज के विद्वान स्वामी सोमदेव का ओजस्वी व्याख्यान सुना। उन्होंने उसे स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानंद तथा महात्मा कबीरदास के साहित्य के साथ-साथ कुछ क्रांतिकारी पुस्तकें भी पढ़ने को दीं। रामप्रसाद उर्दू में 'बिस्मिल' के नाम से शेरो-शायरी करता था। सोमदेव जी उर्दू-फारसी के अच्छे जानकार थे। उन्होंने उसे राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत शायरी लिखने को कहा। बिस्मिल ने अपनी कुछ रचनाएँ उन्हें दिखाईं। बिस्मिल का स्वभाव था जो कविता अच्छी लगती उसे कंठस्थ कर लेता, फिर उसी तर्ज पर अपनी कविता लिख डालता। सोमदेव ने उसकी रचनाएँ अमरीका से प्रकाशित होने वाली 'गदर' पत्रिका में भेज दीं। जब उसकी रचनाएँ 'गदर' में छपीं तो उसका उत्साह और अधिक बढ़ा। अब तो यह वह अच्छे-अच्छे शायरों से भी उम्दा गजलें कहने लगा।

इसी वर्ष रामप्रसाद ने शहर के युवा साथियों को संगठित करके 'आर्य कुमार सभा' की स्थापना की। उसके व्याख्यान और कविताएँ सुनकर सभा में नवयुवकों की संख्या बढ़ने लगी। इससे आर्य समाज के पुराने पदाधिकारियों को भय हो गया। उन्होंने आर्य समाज में इस प्रकार की गतिविधियों पर पाबंदी लगा दी। रामप्रसाद ने खुले मैदान में आर्य कुमार सभा की शाखा लगानी शुरू कर दी। शाहजहाँपुर के पंडित श्रीराम वाजपेयी ने उसे अपनी 'सेवा समिति' में शामिल कर लिया। इसी प्रकार कई अन्य संस्थाओं में उसने अपनी कार्यकुशलता दिखलाकर आस-पास के कई जिलों में ख्याति पा ली। उसके पिता मुरलीधर

आर्य समाज के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने एक दिन कहा-"या तो आर्य समाज में जाना छोड़ दो या घर।" रामप्रसाद ने घर छोड़ दिया। घर में उस दिन भोजन तक नहीं बना। खैर, वे किसी तरह उसे मनाकर वापस घर ले आए।

रामप्रसाद की अंग्रेजी बहुत अच्छी थी। उसे गवर्नमेंट हाई स्कूल में पढ़ने भेजा गया। स्कूल में उसके सबसे अच्छे नंबर आते थे, इसके कारण स्कूल के प्रिंसिपल उसे बहुत चाहते थे। यद्यपि वे ईसाई थे किंतु उन्होंने रामप्रसाद के पिता को अपनी ओर से समझाया कि इसको आर्य समाज में जाने से मत रोको। वहाँ रहकर कुछ अच्छी बातें ही सीखेगा, कम से कम बिगड़ेगा तो नहीं।

साढ़े उन्नीस वर्ष की आयु में वह लखनऊ कांग्रेस में शामिल हुआ। वह कुमार सभा के युवा साथियों की टोली लेकर वहाँ गया था। स्टेशन पर लोकमान्य तिलक का जो अभूतपूर्व स्वागत शाहजहाँपुर के नवयुवकों ने किया, उससे सभी का ध्यान रामप्रसाद की ओर गया। वहीं उसका परिचय गेंदालाल दीक्षित, केशव बलिराम हेडगेवार, मुकुंदीलाल व सोमदेव शर्मा आदि से हुआ। सोमदेव शर्मा से उसकी अच्छी मित्रता हो गई। रामप्रसाद उनके नागरी साहित्य पुस्तकालय से कुछ पुस्तकें भी खरीदकर लाया। 1915 में भाई परमानंद की फाँसी की सजा का समाचार पढ़कर रामप्रसाद ने एक कविता लिखी थी- 'मेरा जन्म!' गेंदालालजी ने यह कविता कहीं पढ़ी थी। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि इसी नवयुवक ने यह कविता लिखी है तो उन्होंने उसे अपने दल में शामिल होने का निमंत्रण दिया। गेंदालालजी उन दिनों 'शिवाजी समिति' के नाम से एक संस्था चलाते थे। उन्होंने भिंड-मुरैना के बीहड़ों से कई कुख्यात डाकुओं को अपने दल में शामिल किया था। जब उन्हें बातचीत में रामप्रसाद से यह ज्ञात हुआ कि उसके पूर्वज भी उसी भिंड मुरैना क्षेत्र के निवासी थे तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। अब तो उन्हें इस बात का पक्का विश्वास हो गया कि यह नवयुवक उनकी संस्था के लिए प्रत्येक दृष्टि से उपयोगी सिद्ध होगा।

रामप्रसाद ने गेंदालालजी के संरक्षण में एक नई संस्था गठित की - 'मातृवेदी'। अपनी संस्था की प्रतिज्ञा भी उसने कविता में लिखी। अब तो जो भी नया सदस्य बनता उसे वही प्रतिज्ञा दोहरानी पड़ती। सिर पर तलवार रखकर दल का सदस्य यह प्रतिज्ञा दोहराता। फिर शुद्ध घी खाता और चीनी मिला दूध पीता। उसके बाद ही उसे दल में शामिल किया जाता। रामप्रसाद ने 'मातृवेदी' की ओर से 28 जनवरी 1918 को एक इश्तहार हिंदी में प्रकाशित किया। उसका मूल पाठ इस प्रकार था- "देशवासियों के नाम संदेश! अंग्रेजों को मारो तथा देश आजाद करो! वंदेमातरम!! देशभक्तों! देश की सुरक्षा हेतु शिवाजी तथा प्रताप के समान अपनी तलवारों को म्यान से निकालो। फिरंगियों को मारकर उनकी लाशों को बोरों में भरो और एक स्वर में हिंदुस्तानियों से कहो कि हिंदुस्तान आजाद है। हमारा शरीर अंग्रेजों को मार डालने में काम आए। अंग्रेजों के सिर काटो और बता दो कि यह उनके अन्याय का परिणाम है।" रामप्रसाद ने इश्तिहार लगाने का काम राजाराम वाजपेयी और मुकुंदीलाल को सौंपा था। इसी प्रकार कविता में लिखी 'मैनपुरी की प्रतिज्ञा' भी उन्होंने छपवाई थी। इसमें भी यही भाव था जो इश्तिहार में छपा था। राजाराम वाजपेयी के घर से इश्तिहार के अतिरिक्त 'मैनपुरी की प्रतिज्ञा' (स्वदेशी शपथ) की 242 छपी हुई प्रतियाँ मिली थीं।

मार्च 1918 में रामप्रसाद ने अपनी माँ मूलमती से 200 रुपये उधार लिए और एक पुस्तक प्रकाशित की- 'अमेरिका की स्वाधीनता कैसे मिली?' यह पुस्तक 1916 में नागरी साहित्य पुस्तकालय, कानपुर से प्रकाशित 'अमेरिका की स्वतंत्रता का इतिहास' से साम्रगी लेकर प्रकाशित की थी। ऐसा डॉ. एन.सी. मेहरोत्रा का मानना है। दल के लिए धन एकत्र करने के उद्देश्य से रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने जून 1918 में दो तथा सितंबर 1918 में एक डकैती भी डाली, किंतु कुछ विशेष हाथ न लगा। 26 से 31 दिसंबर तक सन् 1918 में दिल्ली की कांग्रेस में रामप्रसाद 'बिस्मिल' अपनी पूरी टीम लेकर शामिल हुए। उन्होंने मदनमोहन मालवीय से मिलकर, जो उस समय कांग्रेस-अध्यक्ष थे, अधिवेशन की व्यवस्था में पूरा सहयोग दिया। मालवीयजी रामप्रसाद के प्रबंध से अत्यधिक प्रभावित हुए। बिस्मिल का उद्देश्य कांग्रेस में शामिल होकर अपने विचारों का प्रचार करना था। उधर अन्दर अधिवेशन चल रहा था। इधर बाहर नवयुवक चिल्ला-चिल्लाकर किताबें बेच रहे थे। किसी ने पुलिस को उसकी खबर दे दी। अधिवेशन में छापा पड़ा किन्तु बिस्मिल ने बिक्री से बची हुई पुस्तकें अपने ओवरकोट में छिपायीं और शिविर से नौ ग्यारह हो गए। दिल्ली से भागकर वे शाहजहाँपुर पहुँचे। उन्हें दिल्ली में ही पता

चल गया था कि मैनपुरी में धर-पकड़ प्रारंभ हो गई है, अब उनका बच पाना मुश्किल है। दलपतसिंह ने मुखबिरी कर दी थी। सोमदेव शर्मा सरकारी गवाह बन गया था। उसने पुस्तक के लेखक और प्रकाशन के संबंध में सारी कहानी पुलिस को बता दी थी। बिस्मिल के नाम गैर-जमानती वारंट जारी हो गया। शाहजहाँपुर से वे राजाराम, देवनारायण और गंगासिंह के साथ इलाहाबाद पहुँचे। देवनारायण ने कहा चलो कलकत्ता चलकर वायसराय को ही मार देते हैं। बिस्मिल ने जब इसका विरोध किया तो उन तीनों ने उन्हें ही मार डालने का षड्यंत्र रचा।

बिस्मिल प्रयाग में संगम पर यमुना के किनारे आँख बंद कर संध्या कर रहे थे कि देवनारायण ने उन पर रिवाल्वर से फायर किया। गोली कान के पास से होकर निकल गई। बिस्मिल की आँख खुली, तत्काल उन्होंने अपना रिवाल्वर खोल में से निकाला और ललकारा। तीनों घबड़ाकर भाग खड़े हुए। बिस्मिल को अपने ही साथियों के इस विश्वासघात से बड़ी ठेस लगी। घर पर आकर माँ को सारी घटना बताई और बदला लेने का विचार प्रकट किया। माँ ने बहुत समझाया। वे नहीं माने तो मातृऋण के बदले किसी की भी जान न लेने की प्रतिज्ञा करवाई। आखिरकार वे मान गए। राजाराम को गिरफ्तार करके पुलिस जब उनके घर आई तो वह उसे चकमा देकर भाग गए

बिस्मिल प्रयाग में संगम पर यमुना के किनारे आँख बंद कर संध्या कर रहे थे कि देवनारायण ने उन पर रिवाल्वर से फायर किया। गोली कान के पास से होकर निकल गई। बिस्मिल की आँख खुली, तत्काल उन्होंने अपना रिवाल्वर खोल में से निकाला और ललकारा। तीनों घबड़ाकर भाग खड़े हुए। बिस्मिल को अपने ही साथियों के इस विश्वासघात से बड़ी ठेस लगी। घर पर आकर माँ को सारी घटना बताई और बदला लेने का विचार प्रकट किया। माँ ने बहुत समझाया। वे नहीं माने तो मातृऋण के बदले किसी की भी जान न लेने की प्रतिज्ञा करवाई। आखिरकार वे मान गए। राजाराम को गिरफ्तार करके पुलिस जब उनके घर आई तो वह उसे चकमा देकर भाग गए। अब तो उन्होंने शाहजहाँपुर शहर ही छोड़ दिया। कुछ दिन अपने बाबा के गाँव बरबाई (मध्य प्रदेश) जाकर रहे। वहाँ रहकर खेती की, फिर कोसमा (मैनपुरी) अपनी बहन के यहाँ चले गए। उसने उन्हें बिल्कुल नहीं पहचाना। वे उसके घर पर कुछ दिन नौकर बनकर रहे। दिन भर उसके दुधारू जानवर चराते और पेड़ की छाया में बैठकर अनुवाद करते। पुस्तक जब तैयार हो गई तो पिनहट (आगरा) आ गए। वहाँ पर उनका एक मित्र डाक्टर था - रूपसिंह। उसे घर पर छुट्टी भेज दिया और उसकी एवजी में कई रोज अस्पताल में काम किया। पुस्तक छपवाई, उसका नाम रखा- 'बोल्शेविकों की करतूत'। लोगों ने पुस्तक को खूब सराहा। फिर एक और पुस्तक छापी- 'मन की लहर'। इस प्रकार भूमिगत रहकर उनकी दो पुस्तकें प्रकाश में आ गईं। एक उपन्यास, दूसरा काव्य-संग्रह। 'मन की लहर' को बाद में उन्होंने अहमदाबाद कांग्रेस में उसी प्रकार बेचा था जैसे दिल्ली में 'अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली'। इससे बिस्मिल का नाम राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा में आ गया।

'मैनपुरी कांड' में शाहजहाँपुर से 6 नवयुवक शामिल हुए थे। बिस्मिल ने आगरा जाकर किले में नजरबंद गेंदालाल दीक्षित को छुड़ाने की भी योजना बनाई थी किंतु दीक्षितजी उससे पहले ही नौ दो ग्यारह हो चुके थे। आखिर 1 नवंबर 1919 को मैनपुरी के मजिस्ट्रेट बी.एस. क्रिस ने मैनपुरी कांड का फैसला सुना दिया। जिन-जिन को सजा हुई। थी, फरवरी 1920 में वे सभी छोड़ दिये गए। अकेले मुकुंदीलाल पूरी सजा काटकर ही छूटे। बिस्मिल आम-मुआफी के बाद 1920 में शाहजहाँपुर आए। डर के मारे लोगों ने उनसे संपर्क रखना ही बंद कर दिया। किसी तरह उन्होंने भारत सिल्क मैनुफैक्चरिंग कंपनी में मैनेजर की नौकरी शुरू की। अब जब चार पैसे हो गए तो सभी ने उनका सम्मान करना प्रारंभ कर दिया। वे जिला कांग्रेस कमेटी शाहजहाँपुर के 'आडीटर' भी हो गए। सितंबर 1920 में रामप्रसाद 'बिस्मिल' कलकत्ता कांग्रेस में शमिल हुए। वहाँ लाला लाजपतराय उनकी पुस्तकें देखकर बहुत प्रसन्न हुए। लालाजी ने कलकत्ता के कुछ प्रकाशकों से उनका परिचय भी करा दिया। उनसे उन्हें अपनी पुस्तकें प्रकाशित करवाने में बड़ी सहायता मिली। अन्यथा वे अभी तक अपनी पुस्तकें स्वयं ही प्रकाशित करते थे और स्वयं ही बेचते थे। प्रकाशन व्यवसाय में उन्होंने कभी कोई लाभ नहीं कमाया।

रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने 9, 10 व 11 अक्तूबर को मुरादाबाद के प्रांतीय अधिवेशन में शामिल हुए। वहाँ वे गांधी जी से मिले। बिस्मिल ने शाहजहाँपुर की स्वयंसेवक समिति से गांधी जी का परिचय कराया। गांधी जी ने उन्हें स्वयंसेवक दल का प्रमुख नियुक्त किया। 1921 की अहमदाबाद-कांग्रेस में पूर्ण स्वराज्य की माँग को लेकर जब गांधी जी सहमत नहीं हुए तो बिस्मिल ने मौलाना हसरत मोहानी के साथ मिलकर बगावत कर दी और इस प्रकार उन्होंने गांधी जी से खुली बुराई मोल ले ली। उन्होंने भावावेश में गांधी जी को भला-बुरा भी कहा। रामप्रसाद 'बिस्मिल' दिसंबर 1922 की गया- कांग्रेस में भी शामिल हुए। इससे पूर्व गांधी जी फरवरी 1922 में चौरीचौरा कांड के पश्चात् अपना आंदोलन वापस ले चुके थे। अत: गया-कांग्रेस में उनकी अच्छी खासी खबर ली गई। कांग्रेस में दो फाड़ हो गए। पार्टी में जो संपन्न लोग थे, उन्होंने अपनी अलग पार्टी बनाने की घोषणा कर दी।

पहली जनवरी 1923 को 'स्वराज पार्टी' की स्थापना हो गई। नवयुवकों ने भी अपनी अलग 'क्रांतिकारी पार्टी' बनाने का ऐलान कर दिया। रामप्रसाद 'बिस्मिल' को उसका नेता चुना गया। सितंबर 1923 में दिल्ली की विशेष कांग्रेस के अवसर पर निर्णय हुआ कि क्रांतिकारी दल का नाम और उद्देश्य आदि निश्चित कर लिए जाएँ। शचींद्रनाथ सान्याल उन दिनों इलाहाबाद में रहते थे। रामप्रसाद 'बिस्मिल' को लाला हरदयाल ने सूचना भेजी कि वे इलाहाबाद जाकर यदुगोपाल मुखर्जी से मिलें। उनसे बात कर

ली है। वे संविधान बनाने में सहायता करेंगे। बिस्मिल सान्याल के घर इलाहाबाद पहुँचे। वहीं पर संविधान की नियमावली तथा दल का नाम तय किया गया। 3 अक्तूबर 1924 को 'हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ' की कार्यकारिणी की एक बैठक कानपुर में हुई, जिसमें शचींद्रनाथ सान्याल, रामप्रसाद 'बिस्मिल', योगेशचंद्र चटर्जी आदि प्रमुख सदस्य शामिल हुए। इस बैठक में रामप्रसाद 'बिस्मिल' को दल का नेतृत्व सौंपकर सान्याल और चटर्जी बंगाल चले गए। दल की ओर से पहली राजनीतिक डकैती 20 दिसंबर 1924 को बमरौली में डाली गई, जिसका कुशल नेतृत्व बिस्मिल ने किया।

शस्त्र और शास्त्र में पारंगत, वाणी और बंदूक के धनी पंडित रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने अपने ओजस्वी व्यक्तित्व और प्रभावी नेतृत्व कौशल से 'हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ' का कार्य विस्तार संयुक्त प्रान्त से लेकर दिल्ली, पंजाब, राजपूताना, विदर्भ, बिहार तथा बंगाल तक पहुँचा दिया। बिस्मिल की आग्नेय कविताओं, ओजस्वी व्याख्यानों तथा धारदार लेखनी के शस्त्रों ने अपना चमत्कारी प्रभाव दिखलाया। एक ही रात में 'क्रांतिकारी' इश्तिहार को छप्पन जिलों में पहुँचा देना उनकी कार्यकुशलता का अद्‌भुत उदाहरण है। उन्होंने अपने क्रांतिकारी दल का घोषणा पत्र जनवरी, 1925 में जारी किया था। इसे पढ़ते ही ब्रिटिश साम्राज्य का सिंहासन बुरी तरह हिल उठा। उधर सरकार 'क्रांतिकारी इश्तिहार' के लेखक को बंगाल में ढूँढ रही थी, इधर बिस्मिल ने मार्च और मई 1925 में बिचपुरी और द्वारकापुर में दो राजनीतिक डकैतियाँ मार लीं किंतु इसमें कुछ खास रकम उनके हाथ नहीं आई।

बिस्मिल ने इस बार कार्यकारिणी समिति की बैठक शाहजहाँपुर में बुलाई। उसमें उन्होंने यह निर्णय लिया कि अब किसी व्यक्ति विशेष के यहाँ डकैती डालने के बजाय सरकारी खजाना ही लूटेंगे। उधर बंगाल आर्डिनेंस के तहत शचींद्रनाथ सान्याल और योगेशचंद्र चटर्जी पकड़े जा चुके थे। शचींद्र नाथ सान्याल बाँकुरा में 'क्रांतिकारी' पर्चा बाँटते हुए गिरफ्तार हुए थे। उन्हें दो साल की सजा देकर जेल में भेजा जा चुका था। योगेश चंद्र चटर्जी जैसे ही कानपुर की बैठक समाप्त कर कलकत्ता पहुँचे कि हावड़ा स्टेशन पर धर लिए गए। उन्हें बंगाल आर्डिनेंस के तहत गिरफ्तार कर हजारीबाग जेल में डाल दिया गया। इस प्रकार बंगाल के कार्यकर्ताओं के भरण-पोषण का सारा दायित्व बिस्मिल के कंधों पर आ गया। कार्यकर्ता परेशान थे, पार्टी का कार्य करते हुए उन्हें उदरपूर्ति के लिए धन तो चाहिए ही था। उधर जर्मनी से यह सूचना मिली कि कलकत्ता के बजबज बंदरगाह पर माउजर पिस्तौलों का एक बक्सा पहुँच रहा है। उसे नकद पैसा देकर छुड़ाना होगा। बिस्मिल ने यही योजना बनाने के लिए बैठक बुलाई थी।

बिस्मिल ने नौ व्यक्तियों को साथ लेकर, 9 अगस्त 1925 को काकोरी के पास 8 डाउन, सहारनपुर लखनऊ पैसेन्जर को रोककर उसमें रखा सरकारी खजाना लूट लिया और सभी सदस्य नौ दो ग्यारह हो गए। इसकी सफलता के बाद उनका हौसला और बढ़ गया। उन्होंने मेरठ में मुख्य डाकघर को लूटने की योजना भी बना डाली। यह 'एक्शन' 13 अक्तूबर 1925 को होना था। तभी दुर्भाग्य से डकैती में लूटे गए कुछ नोट शाहजहाँपुर में पकड़े गए। इससे सारा भेद खुल गया और 26 सितंबर 1925 की रात में न केवल शाहजहाँपुर वरन् पूरे देश में 40 लोग गिरफ्तार कर लिए गए। यह कार्य इतनी गोपनीयता से किया गया कि किसी को भनक भी न लगने पाई। इंग्लैंड से विशेष रूप से खुफिया पुलिस भेजी गई और हार्टन के नेतृत्व में अधिकांश मुस्लिम अधिकारियों को गिरफ्तारी का उत्तरदायित्व सौंपा गया। सरकार को डर था कि हिंदू पुलिस अधिकारी कहीं बिस्मिल से मिले हुए न हों। कुछ लोगों को पुलिस ने गिरफ्तार करते ही धमकाकर सरकारी गवाह बना लिया। कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों को छोड़ दिया। 1916 की लखनऊ कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष पं. जगतनारायण मुल्ला, जिन्हें 'मैनपुरी कांड' में सरकारी वकील नियुक्त किया गया था, विशेष रूप से 'काकोरी कांड' के लिए सरकार की ओर से पैरवी करने के लिए नियुक्त किए गए। उनके साथ उनके बेटे आनंद नारायण मुल्ला को भी फीस दी गई। ऐनुद्दीन मजिस्ट्रेट की अदालत में मुकद्दमा पेश हुआ।

खाँबहादुर तसद्दुक हुसैन खुफिया पुलिस के कप्तान को अभियुक्तों के खिलाफ साक्ष्य एकत्र करने का काम सौंपा गया। जिला कलेक्टर और पुलिस कप्तान ने जेल में मिलकर बहुत कोशिश की तथा लालच भी दिया कि किसी प्रकार बिस्मिल अपना संबंध रूस की बोल्शेविक पार्टी से बतला दें। किंतु बिस्मिल ने साफ कहा कि इसमें किसी भी विदेशी पार्टी की कोई भूमिका नहीं है। यह उनके अपने दिमाग की उपज है। बाद में बंगाल से पकड़े गए शचींद्र नाथ सान्याल, योगेश चंद्र चटर्जी और राजेन्द्र लाहिड़ी को भी लखनऊ जेल में बुला लिया गया। अब तो सभी अपने को दल का नेता बताने लगे। एक दूसरे पर दोषारोपण करने लगे। खुफिया पुलिस ने इसका जमकर फायदा उठाया। बिस्मिल ने जेल से ही कुछ लेख लिखकर बाहर भेजे थे। उनमें एक लेख था - 'पुलिस की कमीनी चालें'। भगतसिंह ने इसे अमृतसर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका किरती (कीर्ति) के जून 1927 के अंक में छाप दिया। इस लेख ने छपते ही आग में घी का काम किया। लेख के अनुसार पुलिस ने जो कुछ काकोरी कांड में किया वह सब उसकी

खाँबहादुर तसद्दुक हुसैन खुफिया पुलिस के कप्तान को अभियुक्तों के खिलाफ साक्ष्य एकत्र करने का काम सौंपा गया। जिला कलेक्टर और पुलिस कप्तान ने जेल में मिलकर बहुत कोशिश की तथा लालच भी दिया कि किसी प्रकार बिस्मिल अपना संबंध रूस की बोल्शेविक पार्टी से बतला दें। किंतु बिस्मिल ने साफ कहा कि इसमें किसी भी विदेशी पार्टी की कोई भूमिका नहीं है। यह उनके अपने दिमाग की उपज है। बाद में बंगाल से पकड़े गए शचींद्र नाथ सान्याल, योगेश चंद्र चटर्जी और राजेन्द्र लाहिड़ी को भी लखनऊ जेल में बुला लिया गया। अब तो सभी अपने को दल का नेता बताने लगे

पूर्वाग्रह से ग्रस्त मानसिकता का परिणाम था। बिस्मिल जेल में रहकर भी पूरे देश की खबर रखते थे और लेखों के माध्यम से पुलिस, प्रशासन व सरकार की खूब खबर लेते थे।

'सम्राट बनाम रामप्रसाद 'बिस्मिल' व अन्य' पर मुकद्दमा चला। बिस्मिल, अशफाक, राजेन्द्र और रोशनसिंह को फाँसी की सजा सुनायी गई। अन्य सोलह को कारावास की सजाएँ हुई। 28 जुलाई 1927 को अवध चीफ कोर्ट में सजा कम कराने की अपील की गई। चीफ कोर्ट ने अपने फैसले में रामप्रसाद 'बिस्मिल' को 'महाभयंकर षड्यन्त्रकारी' घोषित करते हुए पिछले फैसले पर अपनी स्वीकृति को मोहर लगा दी। चीफ जस्टिस सर लुइस शर्ट ने अपने फैसले में लिखा- "यह डकैती हिंदुस्तान में डाली जाने वाली अन्य डकैतियों जैसी नहीं हैं, वरन् सरकार को उलटने की एक भयंकर साजिश है। इसका नेता रामप्रसाद 'बिस्मिल' बड़ा ही खतरनाक अपराधी है। इसे यदि छोड़ दिया गया तो आगे चलकर यह इससे भी भयानक कांड कर सकता है।" इसके बाद डिफेंस के वकील मोहनलाल सक्सेना की सलाह पर अभियुक्तों द्वारा सरकार को माफीनामे की अर्जी भेजी गई, उस पर भी कोई सुनवाई न हुई। बिस्मिल के पिता मुरलीधर ने 250 आनरेरी मजिस्ट्रेटों से लिखवाकर अपील भिजवाई। प्रांतीय विधान परिषद् के सदस्य ठाकुर मनजीतसिंह ने सामूहिक हस्ताक्षरों से युक्त एक प्रस्ताव लिखकर सरकार को भेजा। पंडित मदनमोहन मालवीय ने 78 चुने हुए जन प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर युक्त सामूहिक रूप से एक प्रार्थना पत्र गवर्नर और वायसराय को भेजा। होम मेंबर नवाब छतारी से कुछ सदस्यों ने प्रार्थना भी की किंतु किसी के कान पर जूँ न रेंगी। अंतत: प्रिवी कौंसिल लंदन में अपील भेजी गई। किंतु वहाँ भी वही फैसला हुआ-'फाँसी'।

इन अपीलों और प्रार्थनाओं का इतना असर अवश्य हुआ कि फाँसी की तारीख दो बार आगे बढ़ा दी गई। पहले यह तारीख 16 सितंबर 1927 थी, बाद में 11 अक्तूबर 1927 को फाँसी देना तय किया गया। मर्सी अपील चूँकि लंदन की 'प्रिवी कौंसिल' में जा चुकी थी। अत: फाँसी की तारीख फिर आगे के लिए टाल दी गई। अंतत: 19 दिसंबर 1927 (पौषकृष्ण सुफला एकादशी, संवत् 1984) को प्रात: 6 बजकर 30 मिनट पर गोरखपुर की जेल में ब्रिटिश सरकार के सबसे खौफनाक दुश्मन को फाँसी पर लटकाकर मार डाला गया। गोरखपुर की जनता अपने नेता की फाँसी का समाचार सुनकर पागल हो गई। सारे देश से जनता गोरखपुर पहले ही पहुँच चुकी थी। डेढ़ लाख लोगों ने जुलूस निकालकर आर्यसमाजी रीति से बिस्मिल का अंतिम संस्कार राप्ती नदी के किनारे जाकर किया और उसे 'राजघाट' नाम दिया। बिस्मिल ने फाँसी से तीन दिन पूर्व 16 सितंबर 1927 को अपनी आत्मकथा पूर्ण करते हुए कहा था-

मर ले बिस्मिल, रौशन, लाहिड़ी, अशफाक अत्याचार से होंगे पैदा सैकड़ों इनके रुधिर की धार से

देखा जाए तो विस्मिल ब्रिटिश साम्राज्य के लिए रक्तबीज बन गए। उनकी मृत्यु के पश्चात् क्रांति की जो सुनामी लहर आई उसने अंग्रेजों की अन्यायी सरकार को उलटकर रख दिया। रामप्रसाद 'बिस्मिल' साधारण मनुष्य नहीं थे, वे मनुष्य देहधारी ईश्वर के अंशावतार थे, जिन्हें आज भले ही उतना सम्मान न मिल सका हो, पर एक दिन अवश्य आएगा जब उनकी पूजा किसी देवता की तरह घर-घर में होगी।

रामप्रसाद 'बिस्मिल' की रचनाएँ : बिस्मिल जी की रचनाओं में से कुल 11 पुस्तकें ज्ञात और उपलब्ध हैं। इनका विवरण निम्नवत है :

1. मैनपुरी षड्यंत्र : 22 जनवरी 1919 को रामप्रसाद 'बिस्मिल' के साथ प्रयाग में एक ऐसी घटना घटी जिसने उन्हें अपने साथियों के विश्वासघात के प्रति सचेत कर दिया। इसी के परिणामस्वरूप भूमिगत रहते हुए उन्होंने यह पहली पुस्तक कोसमा (जिला मैनपुरी) में लिखी थी। इसे उन्होंने पिनहट (आगरा) में रहकर आर्य भास्कर प्रेस, आगरा से प्रकाशित करवाया था, ऐसा कुछ लोगों का कहना है।

2. अमेरिका की स्वतंत्रता का इतिहास : कुछ लोग 'अमरीका कैसे स्वाधीन हुआ' नामक पुस्तक को भी बिस्मिल की ही लिखी हुई बतलाते हैं।

3. **बोल्शेविकों की करतूत** (रूस की बोल्शेविक क्रांति पर आधारित क्रांतिकारी उपन्यास) : इसे उन्होंने प्रो. राम के छद्मनाम से प्रकाशित किया था।

4. **मन की लहर** (कविताओं का संकलन) : प्रवीण प्रकाशन द्वारा प्रकाशित।

5. **कैथेराइन या स्वाधीनता की देवी :** राष्ट्रीय ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय कलकत्ता से 1922 में उमा दत्त शर्मा ने प्रकाशित किया। यही पुस्तक प्रवीण प्रकाशन दिल्ली द्वारा 'सरफरोशी की तमन्ना' भाग-3 में 1997 में संशोधित होकर प्रकाशित हुई।

6. **स्वदेशी रंग :** आर्य समाज भवन, शाहजहाँपुर तथा आर्य पुस्तकालय, खेकड़ा में कभी उपलब्ध थी अब नहीं है।

7. **क्रांतिकारी जीवन :** इसके कुछ अंश 'सरफरोशी की तमन्ना' भाग-4 में देख सकते हैं। पूरी पुस्तक अभी अप्राप्त है।

8. **यौगिक साधन** (अरविंद घोष की बंगला पुस्तक का अनुवाद): यह पुस्तक प्रवीण प्रकाशन द्वारा सन् 1997 में प्रकाशित 'सरफरोशी की तमन्ना' भाग-3 में संकलित है।

9. **चीनी षड्यंत्र :** (चीन की राजक्रांति)

10. **निज जीवन की एक छटा :** (आत्मकथा) तथा

11. **क्रान्ति गीतांजलि** ।

इन अपीलों और प्रार्थनाओं का इतना असर अवश्य हुआ कि फाँसी की तारीख दो बार आगे बढ़ा दी गई। पहले यह तारीख 16 सितंबर 1927 थी, बाद में 11 अक्तूबर 1927 को फाँसी देना तय किया गया। मर्सी अपील चूँकि लंदन की 'प्रिवी कौंसिल' में जा चुकी थी। अत: फाँसी की तारीख फिर आगे के लिए टाल दी गई। अंतत: 19 दिसंबर 1927 को प्रात: 6 बजकर 30 मिनट पर गोरखपुर की जेल में ब्रिटिश सरकार के सबसे खौफनाक दुश्मन को फाँसी पर लटकाकर मार डाला गया

डॉ. चंद्रपाल सिंह

अतुल्य संगठनकर्ता और विचारक शचींद्र नाथ सान्याल

शचींद्र नाथ सान्याल जितने कुशल संगठनकर्ता थे, उतने ही परिपक्व विचारक। भारतीय ज्ञान परंपरा की अंतर्दृष्टि से संपन्न शचीनदा अपने समय के वैश्विक विचार प्रवाह से भी सुपरिचित थे। समग्र आकलन का विनम्र प्रयास

शचींद्रनाथ सान्याल की अमर कृति 'बंदी जीवन' के 1963 के संस्करण के प्रकाशकीय में लिखा गया कि "भारत के उन महाप्राण वीर देशभक्तों के जीवन और कार्यों का इतिहास अभी तक लगभग अप्रकट ही है, जिन्होंने शस्त्र-बल के सहारे देश को विदेशी दासता से मुक्त कराने का प्रयास किया था"[1]। स्वयं शचींद्रनाथ सान्याल को इस बात का अंदेशा था कि स्वतंत्रता पश्चात क्रांतिकारियों के इतिहास को ठीक से लिखा नहीं जाएगा। 1922 में अपनी पुस्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा कि "यह पुस्तक आज मैं इसलिए लिख रहा हूँ जिससे कि भारत के भविष्यत् इतिहास के कुछ अध्याय ठीक-ठीक लिखे जा सकें।[2]" इस बात को सौ वर्ष से अधिक हो गए हैं। स्वतंत्रता के 77 वर्ष बाद आज भी क्रांतिकारियों का जौहर स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहासलेखन के हाशिये पर ही सिमटा हुआ है। भगत सिंह सरीखे कुछ गिने-चुने बलिदानी तो फिर भी लोकमानस में अपना स्थान पा गए हैं लेकिन शचींद्र सान्याल जैसे कितने ही महावीर जिन्होंने आजादी कि लड़ाई में संसार की सबसे बड़ी महाशक्ति को सशस्त्र टक्कर दी, आज भी विस्मृति की धूल फाँक रहे हैं।

शचींद्र सान्याल, एक सामान्य क्रांतिकारी नहीं थे बल्कि उत्तर भारत के क्रांतिकारी आंदोलन के सबसे बड़े संगठनकर्ता थे। उन्हें 1915 के बाद बंगाल से क्रांतिकारी गतिविधियों के केंद्र को उत्तर भारत में लाने का श्रेय दिया जा सकता है। उन्होंने रासबिहारी बोस के साथ और विदेशों में स्थित भारतीयों से मिलकर 1915 में दूसरे 1857 यानि गदर की संकल्पना की और अंग्रेजी फौज में भारतीय सैनिकों की सहायता से उसे मूर्त देने का महान प्रयास किया। उन्होंने भगत सिंह आदि अनेकानेक युवकों की योग्यता को पहचाना, प्रेरित किया और क्रांतिकारी दल का सदस्य बनाया। शचींद्र सान्याल ने हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन की स्थापना की, बंगाल से लेकर पंजाब तक शहर -शहर जा कर दल की शाखाएँ बनाई, दल की विचारधारा और कार्यप्रणाली का विकास किया, दल का संविधान बनाया, देश को झकझोर देने वाले पर्चे लिखे। गांधीजी समेत कांग्रेस के बड़े नेताओं से संवाद और विमर्श किया। नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने भी भारत छोड़ने से पहले शचीनदा से लंबा सलाह मशविरा किया। शचींद्र सान्याल ने क्रांतिकारी संगठन के साथ भारत और विश्व की ज्ञान परंपराओं का विशद अध्ययन किया और मार्क्सवाद और समाजवाद की उत्कृष्ट समालोचना प्रस्तुत की। सशस्त्र संघर्ष की सार्थकता, स्वतंत्रता का स्वरूप कैसा हो, अन्य सामयिक सामाजिक, राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय मसलों पर 'बंदी जीवन', 'विचार विनिमय', 'साहित्य, समाज, और संस्कृति', 'ध र्म, समाज और विज्ञान' जैसी पुस्तकें लिखीं। 'संघर्ष', 'प्रताप', 'अग्रगामी', 'नारायण' जैसे अनेक पत्र-पत्रिकाओं में अनेकों लेख लिखे। इतना सब कुछ करते हुए उन्होंने अपने 50 वर्ष के कुल जीवन में से लगभग आधा जीवन कारागार की यातनाएँ को सहते हुए बिता दिया, जिसमें दो बार का आजन्म काला पानी कारावास भी शामिल है। इस बेहद संक्षिप्त विवरण से यह अंदाजा हो जाता है कि शचींद्र सान्याल का स्वातंत्र्य समर में कोई छोटा स्थान नहीं है।

शचींद्रनाथ सान्याल का जन्म 3 जून, 1993 को कोलकाता में हुआ था। बाल अवस्था में ही उन्होंने संकल्प कर लिया था कि "भारत को स्वाधीन किया जाना है और उसके लिए मुझे

सामरिक जीवन व्यतीत करना है"[3]। लगभग 13-14 वर्ष की आयु में ही वे अविभाजित बंगाल के क्रांतिकारी संगठन अनुशीलन समिति के माध्यम से क्रांतिकारी आंदोलन से जुड़ गए। 1908 में पिताजी के निधन के उपरांत शचींद्र परिवार सहित बनारस आ गए और बंगाली टोला हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा पास की। बंगाली टोला विद्यालय में आज भी एक स्मारक पट लगा हुआ है जिसके अनुसार स्वातंत्र समर के दौरान इस विद्यालय के शिक्षक सुशील कुमार लाहिड़ी और छात्र राजेंद्र नाथ लाहिड़ी को मृत्युदंड मिला, छात्र शचींद्रनाथ सान्याल को आजीवन निर्वासन और कई अन्य शिक्षकों और छात्रों को कारावास की सजा हुई।[4] यहीं पढ़ते हुए युवा शचींद्र ने बनारस में अनुशीलन समिति की शाखा स्थापित करने में पहल की। शचींद्र ने यह भी लिखा है कि उन दिनों वे शिवाजी को अपना आदर्श मानने लगे थे।[5] जब अनुशीलन को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया तो उन्होंने शाखा का नाम बदल कर 'यंग मैंस एसोसिएशन' रख दिया। इस संगठन के एक सदस्य ने बाद में रहस्योद्घाटन किया इस संगठन की एक अंतरंग समिति थी। युवक महाकाली की मूर्ति के समक्ष अपने रक्त से हस्ताक्षर करके इसके सदस्य बनते थे। कालीपूजा के समय एसोसिएशन के सदस्य एक सफेद कद्दू काटते थे। यह सफेद कद्दू क्रूर एवं गोरे शासकों का प्रतीक माना जाता था। ये युवक मदनपुरा में एक आदर्श विद्यालय भी चलाते थे।[6] सप्लीमेंट्री बनारस मामले में विशेष न्यायाधिकरण के निर्णय में लिखा है कि:

"यंग मेंस एसोसिएशन, 1908 में शुरू हुआ। इसमें विभिन्न स्थानीय स्कूलों के छात्र शामिल थे। यह लड़कों के बीच क्रांतिकारी विचारों के प्रसार की नींव प्रतीत होती है। इसमें एक आंतरिक गुट भी था जिसमें चुनिंदा सदस्य शामिल थे जिनके बीच नैतिक कक्षाएँ आयोजित की जाती थीं; इन कक्षाओं में देशद्रोह के मामलों पर चर्चा की जाती थी और युवाओं के दिमाग में देशद्रोह की भावना पैदा करने के लिए व्याख्याताओं द्वारा गीता की नैतिक बातों को विकृत किया जाता था। यह... अकेले ही एसोसिएशन के संस्थापक-शचींद्र नाथ सान्याल के उद्देश्यों के अनुरूप नहीं था। .... शचींद्र का उद्देश्य इन प्रांतों में बंगाल के अराजकतावादियों के समान कार्य करना था। ... इस नए संगठन का उद्देश्य भारत में विद्रोह भड़काना था। ... नई पार्टी बंगाल के अराजकतावादियों में शामिल होना चाहती थी और उनकी मदद से विस्फोटक और हथियार प्राप्त करना चाहती थी। विद्रोह को भड़काने के लिए अपनाए गए साधन हैं देशद्रोही साहित्य का वितरण, सैनिकों को लुभाना और हथियारों और गोला-बारूद का संग्रह। सरकारी गवाहों ने विस्तार से वर्णन किया है कि कैसे विभिन्न स्थानीय स्कूलों और संस्थानों में देशद्रोही पर्चे छोड़े गए और दीवारों पर चिपकाए गए, बनारस, रामनगर और दीनापुर में सैनिकों को लुभाने के लिए क्या प्रयास किए गए, और धनुष बम, पिस्तौल और गोला-बारूद बंगाल और मध्य भारत से षड्यंत्रकारियों द्वारा लाए गए थे।[7]"

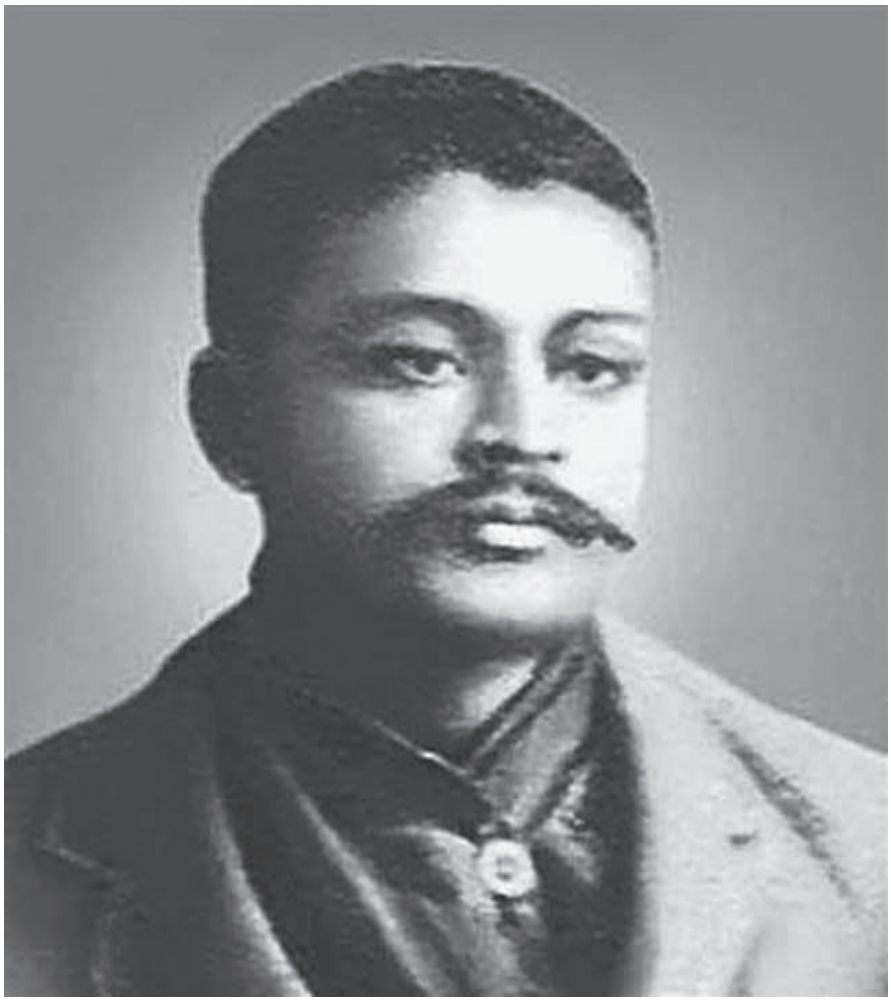

जब रासबिहारी बोस ने उत्तर भारत में क्रांतिकारी आंदोलन का संगठन प्रारंभ किया तो शचींद्र उनके प्रमुख सहयोगी बन गए और रासबिहारी बोस के साथ पंजाब की छावनियों में घूम-घूम कर हिंदुस्तानी सैनिकों में क्रांति का प्रचार करने लगे। दरअसल इनकी चेष्टा गदर पार्टी के साथ मिलकर प्रथम विश्वयुद्ध का लाभ उठाते हुए भारत में अट्ठारह सौ सत्तावन की तर्ज पर ऐसा महाविद्रोह करना था जिसमें सैनिक और क्रांतिकारी मिलकर विद्रोह करें। पंजाब के विद्रोही इस कार्य में रास बिहारी बोस का मार्गदर्शन चाहते थे लेकिन उनकी जगह स्थिति का जायजा लेने के लिए शचींद्र को पंजाब भेजा गया। 21 फरवरी 1915 को विद्रोह प्रारंभ करने का दिन भी तय कर लिया गया लेकिन दुर्भाग्य से सरकार को पहले ही भनक लग गई और विद्रोह प्रारंभ न हो सका। परिणामस्वरूप विद्रोह के नेताओं की धरपकड़ हुई, करतार सिंह सराभा समेत अनेक विद्रोही नेताओं की फाँसियाँ और आजीवन कारावास हुए। शचींद्र ने इस विद्रोह की तैयारी और इस दिशा में

अपने प्रयासों का विस्तारपूर्ण वर्णन 'बंदी जीवन' में किया है।

ऐसे समय में जब पूरे देश की पुलिस रास बिहारी बोस को दिल्ली में वायसराय पर बम फेंकने के मामले में पहले से ही ढूँढ रही थी और गदर के सिलसिले में उनके नेतृत्व को सभी विद्रोही मान रहे थे, तब शचींद्र का ही कौशल था कि उन्होंने रास बिहारी बोस को देश छोड़कर जापान जाने के लिए मना लिया और 4 मई 1915 को जापान जाने वाले जहाज पर सकुशल रवाना कर दिया। कुछ दिनों के बाद, 26 जून 1915 को शचींद्र गिरफ्तार हो गए। उन पर बनारस षड्यंत्र के अंतर्गत मुकदमा चलाया गया। न्यायाधीशों ने अपने निर्णय में रेखांकित किया की बनारस में शचींद्र के नेतृत्व में चल रही क्रांतिकारी गतिविधियाँ बंगाल और पंजाब में चल रहे बड़े षड्यंत्र का हिस्सा थीं।[8] शचींद्र को आजीवन कारावास की सजा मिली और उन्हें काला पानी अंडमान में भेजा गया।

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात मोंटैगू-चेल्म्सफोर्ड सुधारों के तहत रॉयल एमनेस्टी के अंतर्गत शचींद्र को काला पानी से रिहा कर दिया गया। 1921 में उन्होंने विवाह कर लिया और इलाहाबाद आकार बस गए। अगस्त 1922 में उनकी प्रथम पुस्तक 'बंदी जीवन' हिंदी में छपी। इससे पहले इस पुस्तक के अंश बांग्ला समाचार पत्रों में छपे थे। सशस्त्र संघर्ष के चाणक्य शचींद्र सान्याल जी के साहित्य सृजन के औचित्य को पुस्तक के प्रथम संस्करण की भूमिका में लिखे निम्नलिखित कथन से समझा जा सकता है कि

"किसी समाज को पहचानने के लिए उस समाज के साहित्य से परिचित होने की परम आवश्यकता होती होती है। क्योंकि समाज के प्राणों की चेतना उस समाज के साहित्य में प्रतिफलित हुआ करती है। आज भारत धवंस और निर्माण के बीच क्रमश: अपनी सार्थकता को खोजता फिरता है, अत: भारत का समाज यदि सजीव होगा तो भारत के प्राणों की इस अशांति का चित्र उसके साहित्य में अवश्य ही अपने प्रतिबिंब को अंकित कर देगा।[9]"

काकोरी केस के मुकदमे के दौरान ब्रिटिश अधिकारियों ने उपरोक्त पुस्तक को राजद्रोह अपराध के संदर्भ में देखा:

"यह इतिहास से कहीं अधिक है क्योंकि यह एक उद्देश्य के साथ बहुत स्पष्ट ढंग से लिखी गई है, अर्थात् अतीत में की गई गलतियों और भविष्य में उनसे बचने का तरीका दिखाने के लिए। यह दर्शाता है कि क्रांतिकारी दलों को कैसे संगठित किया जाना चाहिए; हथियार कैसे प्राप्त किए जा सकते हैं और बम कैसे बनाए जा सकते हैं; कैसे झूठे नामधारी और छद्मवेश अपनाए जाएँ और षड्यंत्रकारियों को समूहों में बाँट दिया जाए ताकि देशद्रोही पूरी जानकारी न दे सकें; पुलिस निगरानी से कैसे बचा जा सकता है; डकैती क्यों आवश्यक है और अंतिम उद्देश्य जनविद्रोह की प्राप्ति के लिए सरकारी खजाने की लूट और जेलों में कैदियों की रिहाई से संबंधित है।[10]"

फरवरी 1922 में गांधीजी द्वारा असहयोग आंदोलन को अचानक वापस लिए जाने के बाद शचींद्र फिर से क्रांतिकारी संगठन में जुट गए और 1923 तक संपूर्ण युक्त प्रांत यानि आज के उत्तर प्रदेश में एक बड़ा संगठन बना लिया। 1924 में मेरठ के विष्णु शरण दूबलिश, शाहजहांपुर के रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाक उल्ला खाँ, कानपुर के सुरेश चंद्र भट्टाचार्य और उनका दल, बनारस के शचींद्रनाथ बख्शी, राजेंद्रनाथ लाहिड़ी और उत्तर भारत के अनेक क्रांतिकारियों को इकट्ठा कर 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' के नाम से एक दल बनाया गया।[11] हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन उत्तर भारत की क्रांतिकारी गतिविधियों का केंद्र-बिंदु बन गया। चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह, सुखदेव, भगवती चरण वोहरा, राजगुरु, शिव वर्मा, विजय कुमार सिन्हा, बटुकेश्वर दत्त आदि इसी संगठन में जुड़े। पुलिस की आँखों से बच कर, एक-एक व्यक्ति को को चुनकर-परखकर, आपस में तालमेल बनाकर, संपूर्ण उत्तर भारतीय क्रांतिकारी संगठनों को जोड़ कर हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन का संगठन करना शचींद्र सान्याल की साधना, योग्यता, और क्रांतिकारियों में उनकी साख बयान करता है। हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन की स्थापना को शचींद्रनाथ सान्याल की अनेकानेक उपलब्धियों में शीर्ष पर रखा जा सकता है।

आयरिश रिपब्लिकन एसोसिएशन की तर्ज पर बने इस दल का बाकायदा संविधान शचींद्र ने बनाया जो कि उनकी दृष्टि और विश्व राजनीति की उनकी समझ को दर्शाता है। इस संविधान के अनुसार "एसोसिएशन का उद्देश्य संगठित एवं सशस्त्र क्रांति के द्वारा भारत के संयुक्त प्रांतों का संघबद्ध गणतंत्र होगा... गणतंत्र का मूल सिद्धांत सभी के लिए मताधिकार और ऐसी समस्त व्यवस्थाओं का उन्मूलन होगा जो कि मनुष्य द्वारा मनुष्य के किसी भी प्रकार के शोषण को संभव बनाती है।"[12] भारतीय संस्कृति की मूल भावना के प्रति शचींद्र और उनके साथी क्रांतिकारियों का समर्पण इस संविधान में वर्णित जिला संगठनकर्ता से अपेक्षित निम्नलिखित दो योग्यताओं से प्रदर्शित होताहै:

"उसे भारत द्वारा विकसित की गई सभ्यता-विशेष के विशिष्ट संदर्भ में समसामयिक राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को समझने की क्षमता होनी चाहिए। स्वतंत्र भारत के जीवन लक्ष्य और मंजिल को लेकर उसे अवश्य ही आस्थावान होना चाहिए, जो कि मनुष्य की आत्मिक एवं भौतिक दोनों प्रकार की

फरवरी 1922 में गांधीजी द्वारा असहयोग आंदोलन को अचानक वापस लिए जाने के बाद शचींद्र फिर से क्रांतिकारी संगठन में जुट गए और 1923 तक संपूर्ण युक्त प्रांत यानि आज के उत्तर प्रदेश में एक बड़ा संगठन बना लिया। 1924 में मेरठ के विष्णु शरण दूबलिश, शाहजहांपुर के रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाक उल्ला खाँ, कानपुर के सुरेश चंद्र भट्टाचार्य और उनका दल, बनारस के शचींद्रनाथ बख्शी, राजेंद्रनाथ लाहिड़ी और उत्तर भारत के अनेक क्रांतिकारियों को इकट्ठा कर 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' के नाम से एक दल बनाया गया

गतिविधियों के विभिन्न क्षेत्रों में सामंजस्य कायम करती है।"[13]

वामपंथी लेखकों ने भगत सिंह की अगुआई में सितंबर 1928 में हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन के नाम में समाजवादी शब्द जोड़ने का तो खूब प्रचार किया है परंतु वे इस तथ्य को नजरअंदाज कर देते हैं कि दल के संविधान में कोई संशोधन नहीं किया गया। इससे यह पुष्टि भी होती है की शचींद्र सान्याल की विश्वदृष्टि युगानुकूल थी और उसके दायरे में नए-पुराने क्रांतिकारियों के विचार समा जाते थे।

शचींद्रनाथ सान्याल अपने समय के उन गिने चुने लोगों में से थे जिनके पास वह बौद्धिकता भरे दृढ़ विश्वास का साहस था कि गांधी जी को ललकार सकें। शचींद्र जी ने गांधी जी को चिट्ठी लिख कर खुली चुनौती दी और गांधी जी का बड़प्पन इतना कि न केवल उसका जवाब दिया बल्कि शचींद्र के पत्र को 12 फरवरी 1925 के 'यंग इंडिया' में ज्यों का त्यों छाप दिया। गांधी जी को वर्तमान युग के महानतम व्यक्तित्वों में से एक मानते हुए शचींद्र सान्याल ने तर्कपूर्ण ढंग से सिद्ध करने की कोशिश की कि गांधीवाद का आदर्श भारतीय संस्कृति एवं परंपराओं के अनुरूप नहीं है बल्कि हताशा से उपजे टोल्स्टॉयवाद के साथ बौद्ध धर्म का आधा-अधूरा मिश्रण है। उन्होंने आरोप लगाया कि गांधी के समर्थक व्यक्ति-पूजा से ग्रसित हैं। अपने पत्र की समाप्ति उन्होंने इन शब्दों से की - "क्रांतिकारियों ने मातृभूमि की सेवा के लिए अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया है, और यदि आप उनकी सहायता नहीं कर सकते, तो कम से कम उनके प्रति असहिष्णु तो न बनें।"[14]

शचींद्रनाथ सान्याल के व्यक्तित्व और नेतृत्व में बौद्धिकता और सैन्य संगठनकर्ता के गुणों का अद्‌भुत तालमेल था। उनके द्व ारा लिखित परचा 'द रेवोल्यूशनरी' भी चर्चा योग्य है। इसे क्रांतिकारी दल का घोषणापत्र माना जा सकता है और इस परचे को 31 दिसंबर 1924 की रात और 1 जनवरी 1925 के बीच भारत के लगभग सभी प्रमुख शहरों में वितरित किया गया। परचे के आरंभ में ही लिखा गया था। "नए तारे के जन्म के लिए उथल-पुथल जरूरी है। जैसे प्रसव के समय दर्द और दु:ख का होना स्वाभाविक

शचींद्रनाथ सान्याल के व्यक्तित्व और नेतृत्व में बौद्धिकता और सैन्य संगठनकर्ता के गुणों का अद्‌भुत तालमेल था। उनके द्वारा लिखित परचा 'द रेवोल्यूशनरी' भी चर्चा योग्य है। इसे क्रांतिकारी दल का घोषणापत्र माना जा सकता है और इस परचे को 31 दिसंबर 1924 की रात और 1 जनवरी 1925 के बीच भारत के लगभग सभी प्रमुख शहरों में वितरित किया गया। परचे के आरंभ में ही लिखा गया था। "नए तारे के जन्म के लिए उथल-पुथल जरूरी है। जैसे प्रसव के समय दर्द और दु:ख का होना स्वाभाविक है, वैसे ही किसी देश के परिवर्तन काल में तथा नया युग लाने के किए क्रांति और उथल-पुथल होना स्वाभाविक है

है, वैसे ही किसी देश के परिवर्तन काल में तथा नया युग लाने के किए क्रांति और उथल-पुथल होना स्वाभाविक है।" इस परचे में अहिंसा की नीति की आलोचना की गई थी और आने वाली सशस्त्र क्रांति के दर्शन और उसके औचित्य से परिचय कराया गया।

"हमारा आदर्श संगठित तरीके से मानवता की सेवा करना है... भारत अपने आदर्श को मूर्त रूप दे सके इसके लिए उसका पृथक और स्वतंत्र अस्तित्व बहुत जरूरी है। इस स्वतंत्रता को कभी भी शांतिपूर्ण एवं संवैधानिक तरीकों से हासिल नहीं किया जा सकता।... भारत के युवाओं, अपने भ्रमों को दूर भगाओ और मजबूत हृदय से वास्तविकता का सामना करो और संघर्ष, कठिनाइयों एवं कुर्बानियों से बचो नहीं।.... भारतीय क्रांतिकारी न तो आतंकवादी हैं और न ही अराजकतावादी...वे यह नहीं मानते कि अकेला आतंकवाद ही आजादी दिला सकता है... हालाँकि यह संभव है कि वे समय-समय पर प्रतिकार के बहुत ही प्रभावी साधन के रूप में इस तरीके को काम में ले आएँ।... सरकारी आतंकवाद का जबाब प्रति आतंकवाद से दिया जाना तय है। हमारे समाज के प्रत्येक स्तर में पूरी तरह से बेचारगी की भावना व्याप्त है और समाज में समुचित जज्बे की बहाली के लिए सशस्त्र प्रतिकार प्रभावी उपाय है... पार्टी कभी भी यह नहीं भूलेगी कि आतंकवाद लक्ष्य नहीं है और वे निरंतर ऐसे नि:स्वार्थ एवं समर्पित कार्यकर्ताओं के दल संगठित करने की कोशिश करते रहेंगे जो कि अपने देश की राजनैतिक और सामाजिक मुक्ति के लिए अपनी पूरी ऊर्जा झोंक देंगे। वे सदैव यह याद रखेंगे की राष्ट्र-निर्माण के लिए हजारों ऐसे गुमनाम स्त्री-पुरुषों के आत्मबलिदान की आवश्यकता पड़ती है जो कि अपने खुद के आराम या स्वार्थ, अपने स्वयं के जीवन या अपने प्रियजनों के जीवन के मुकाबले अपने देश के विचार की अधिक परवाह करते हैं।"[15]

सशस्त्र क्रांति की आवश्यकता और क्रांतिकारियों के विरुद्ध दुष्प्रचार को बेअसर करने के उद्देश्य से शचींद्र सान्याल द्वारा लिखित बांग्ला में भी एक परचा 'देशबाशिर प्रति निवेदन' वितरित किया गया। ब्रिटिश सरकार ने इन परचों विशेषतया 'द रेवोल्यूशनरी' को बहुत गंभीरता से लिया और इसके जारी होने के दो महीने के बाद शचींद्र को गिरफ्तार कर लिया। परचे को लिखने और उसका वितरण करने के अपराध में उनके ऊपर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया और 18 सितंबर 1925 को आईपीसी की धारा 124 ए में उन्हें दो साल की सजा सुनाई गई।

शचींद्र के ऊपर मुकदमे की कार्रवाई चल ही रही थी कि हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन के जाँबाजों ने हरदोई से लखनऊ जा रही 8 डाउन पैसेंजर ट्रेन को 9 अगस्त 1925 की शाम रोक कर सरकारी खजाना लूट लिया। इस सनसनीखेज घटना के बाद सरकार ने काकोरी षड्यंत्र केस में ब्रिटिश सरकार ने क्रांतिकारियों को फँसाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। डेढ़ साल मुकदमा चलने के बाद स्पेशल सेशन जज ए. हेमिल्टन ने शचींद्रनाथ सान्याल को आजन्म काला पानी की सजा दी। उनके साथ राम प्रसाद बिस्मिल, राजेंद्रनाथ लाहिड़ी और रोशन सिंह को

फाँसी की सजा सुनाई गई। मन्मथनाथ गुप्त को 14 वर्ष, राजकुमार सिंह, रामकृष्ण खत्री, मुकंदीलाल, गोविंद कार, तथा जोगेश चटर्जी को 10-10 वर्ष की सजा हुई। सुरेशचंद्र भट्टाचार्य तथा विष्णुशरण दुबलिश को 7-7 वर्ष एवं रामदुलारे त्रिवेदी, प्रेमकृष्ण खन्ना, भूपेंद्र सान्याल (शचींद्र सान्याल के छोटे भाई), रामनाथ पांडे, प्राणवेश चटर्जी आदि को ५-५ वर्ष की सजा दी गई। सप्लीमेंटरी कांस्पिरेसी में अशफाक उल्ला खाँ को फाँसी की सजा दी गई और शचींद्रनाथ बख्शी को आजन्म काला पानी की सजा दी गई। हालाँकि शचींद्रनाथ सान्याल और शचींद्रनाथ नाथ बख्शी ने अपील नहीं की थी।[16]

काकोरी मामले में आजीवन कारावास काटते हुए शचींद्र सान्याल 12 वर्षों तक लखनऊ, नैनी और आगरा जेलों में रहे। उनके पुत्र रंजीत कुमार सान्याल के अनुसार जब भी वे अपने पिताजी से मुलाकात करने जेल जाते तो उन्हें शचींद्र जी हमेशा प्रफुल्लित और मुस्कुराते हुए ही दिखते। साथी क्रांतिकारी रामकृष्ण खत्री के अनुसार शचींद्र जेल में अध्ययनशील रहते थे और उनके पास पुस्तकों का एक बड़ा पुलिंदा था जिसमें भारतीय दर्शन, इतिहास, उपन्यास तथा अन्य विषयों की पुस्तकें थी।[17]

भारत शासन अधिनियम, 1935 के अंतर्गत प्रांतीय स्वायत्तता योजना के अंतर्गत यू.पी. में कांग्रेस मंत्रिमंडल गठित हो जाने के उपरांत सन् 1937 के अगस्त माह में शचींद्र सान्याल को आजीवन कारावास के दंड से मुक्ति मिली। किंतु इसके लिए उन्हें और समस्त राजनैतिक बंदियों को अनशन का सहारा लेना पड़ा था।[18] जेल से छूटते ही उन्होंने 'संघर्ष', 'अग्रगामी' और 'प्रताप' जैसे पत्र-पत्रिकाओं में राजनैतिक, दर्शन, संस्कृति, विज्ञान आदि विषयों पर लेख लिखने शुरू कर दिए। उनकी पत्नी ने उनके मित्रों से शिकायत की थी कि शचींद्र जी को मधुमेह है, डॉक्टर ने नियमित रूप से टहलने को कहा था लेकिन शचींद्र जी तो बस दिन रात लिखते ही रहते हैं। 1938 में उन्होंने 'बंदी जीवन' का पुनः प्रकाशन कराया। इसी वर्ष उनकी पुस्तक 'विचार विनिमय' छपी।

सितंबर 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध आरंभ होने के बाद राजनैतिक परिस्थियाँ बदल गईं। ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों से पूछे बिना भारत को महायुद्ध में झोंक दिया जिसके विरोधस्वरूप अक्तूबर- नवम्बर 1939 में सात प्रांतों में कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिया। शचींद्रनाथ सान्याल को अंदेशा हो गया था कि उन्हें पुनः गिरफ्तार किया जा सकता है क्योंकि उनकी राजनैतिक गतिविधियाँ सरकार की आंख का काँटा बनी हुई थी। सरकार को जानकारी थी कि वे पंजाब में गदर के पुराने नेताओं से मिलने गए थे, सुभाष चंद्र बोस से भी उनकी लंबी मंत्रणा हुई थी और जापान के राजदूत से भी मिले थे। आखिर 13 नवंबर 1940 को उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया19 और फरवरी 1941 में अजमेर के निकट देवली कैम्प में भेज दिया गया।[20] देवली कैंप में हिंदुस्तान रिपब्लिकन सोशलिस्ट एसोसिएशन के क्रांतिकारी अजय घोष भी बंदी थे जो कि बाद में कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव भी रहे। अजय घोष फेफड़ों की तपेदिक से पीड़ित थे और शचींद्र उनकी सेवा करते हुए स्वयं भी इस बीमारी से ग्रस्त हो गए। मधुमेह और तपेदिक ने मिलकर गंभीर बीमारी का रूप ले लिया। देवली कैंप में तपेदिक के इलाज की सुविधा नहीं थी। चूँकि शचींद्र पर ना कोई स्पष्ट आरोप थे, न कोई मुकदमा चल रहा था अतः शचींद्र और उनके परिवार ने सरकार से लंबा पत्राचार किया कि या तो उन्हें चिकित्सीय आधार पर रिहा कर दिया जाय या फिर बनारस में या ऐसी किसी जेल में स्थानांतरित कर दिया जाए जहाँ इलाज की सुविधा हो।[21] जेल में इनकी हालत बिगड़ने लगी। अंततः परिवार और गोविंदवल्लभ पंत के प्रयासों से उन्हें चिकित्सा कराने हेतु इस शर्त के साथ रिहा किया गया कि वे प्रतिदिन पुलिस के पास थाने में रिपोर्ट किया करेंगे। गोविंदवल्लभ पंत की सिफारिश पर उन्हें भवाली सेनेटोरियम ले जाया गया। वहाँ भी उनकी हालात में कोई सुधार नहीं हुआ तो उनके छोटे भाई के पास गोरखपुर लाया गया जहाँ 6 फरवरी 1943 को 49 वर्ष की आयु में उनका देहांत हो गया।

मात्र क्रांतिकारी दल के संगठनकर्ता के रूप में शचींद्र नाथ सान्याल का परिचय अधूरा है। क्रांतिकारी गतिविधियों में जान हथेली पर रख कर घूमते हुए या जेल की सीखचों के पीछे आजीवन कारावास भोगते हुए भी शचींद्र अपने समय में चल रहे बौद्धिक विमर्शों से ना केवल पूरी तरह वाकिफ रहे बल्कि उसमें भाग भी लिया।

अनेक क्रांतिकारी साथियों के साम्यवाद की ओर आकर्षित होने के संदर्भ में शचींद्र सान्याल की साम्यवाद पर टिप्पणी अत्यंत सटीक और समालोचक थी। 1920 के दशक में जब क्रांतिकारी ही नहीं बल्कि गांधी जी के अतिरिक्त अधिकांश कांग्रेसी नेता भी रूसी क्रांति और साम्यवाद से प्रभावित थे, शचींद्र ने साम्यवाद का वस्तुपरक विश्लेषण किया। उन्होंने लेनिन और साम्यवाद के बारे में 1921-22 में अध्ययन और लेखन प्रारंभ कर दिया। उसी समय उनका संपर्क कुतबुद्दीन जो कि एम.एन. राय के संदेश वाहक थे और कानपुर के सत्यभक्त से हुआ। सत्यभक्त ने 1925 में भारत में सबसे पहले कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना कि थी हालाँकि एक भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना 1920 में ताशकंद में की जा चुकी थी। 1923 से मृत्युपर्यंत कम्युनिज्म का विशद अध्ययन करते हुए शचींद्र इस विचारधारा के गुण-दोषों का वस्तुपरक आकलन किया:

"सन् 1923 से लेकर आज तक अपनी सामर्थ्य के अनुसार कम्युनिज्म के बारे में अध्ययन किया, कम्युनिस्टों के संपर्क में आया, कम्युनिस्ट विचार के व्यक्तियों से प्रचुर वाद-विवाद किया, लेकिन आज भी मेरा दृढ़ विश्वास है कि कम्युनिज्म में, उसके अंतर्निहित मानव कल्याण की महान प्रेरणा के साथ कुछ ऐसे अवांतर सिद्धांतों का समावेश हुआ है, जिनका सत्य के साथ कोई संबंध नहीं है।

मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि पाश्चात्य सभ्यता की श्रेष्ठ देन है कम्युनिज्म का महान आदर्श। इस आदर्श के अनुसार समाज के कल्याण के सामने व्यक्तिगत लाभ एवं क्षति की कोई परवाह न करना, परम कर्तव्य समझा गया है...

इस सिद्धांत के साथ भारतीय प्राचीन आदर्श का कोई विरोध नहीं दिखाई पड़ता। लेकिन कम्युनिज्म के सिद्धांत को ग्रहण करते समय मेरे कितने ही साथियों ने भारत के अध्यात्मवाद को तिलांजलि दे दी है। मैं ऐसा कर नहीं पाया। इसलिए जेल में रहते

ही मेरे साथियों से मेरा प्रचंड विरोध पैदा हो गया।"[22]

शचींद्र ने कम्युनिज्म के आदर्शों को महान बताते हुए इसकी कमियों की भी व्याख्या की। वे साम्यवाद के मूल में स्थित इतिहास की आर्थिक व्याख्या, द्वंद्वात्मक भौतिक और दार्शनिक अंश से सहमत नहीं हुए। उन्हें कम्युनिज्म में सबसे बड़ी बुराई यह दिखती थी कि वहाँ विचारों की स्वतंत्रता और अध्यात्म के लिए कोई स्थान नहीं था। उन्होंने रूस की बोल्शेविक पार्टी का हवाला देते हुए यह भी माना कि कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों की संख्या बहुत कम होते हुए भी यह पार्टी उपेक्षा के योग्य नहीं है क्योंकि भारत में आज (1938) दूसरी और कोई ऐसी संस्था नहीं है, जो की क्रांति के लिए काम कर रही है। हालाँकि वे इस बात से भलीभाँति परिचित थे कि कम्युनिस्ट पार्टी का संचालन रुस से होता था।[23] अपने लेखों में शचींद्र जी ने भारतीय दर्शन, योग व अन्य परंपराओं को श्रेष्ठ माना। उन्होंने कर्मवाद और उसके लिए जन्मांतरवाद में विश्वास व्यक्त किया। उनके अनुसार समाज व्यवस्था में गुण, कर्म एवं प्रतिभा के आधार पर श्रेणी कल्याणप्रद और आवश्यक है, न कि वित्त के आधार पर। साम्राज्यवाद और डिक्टेटरशिप का विरोध किया और उनके स्थान पर अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था प्रजातांत्रिक स्थापित होनी चाहिए जो कि प्राच्य एवं पाश्चात्य सभ्यता के श्रेष्ठ सिद्धांतों से युक्त हो और मानवमात्र की सेवा करना जिसका आदर्श हो।

"सर्वोपरि मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि संसार की भलाई के लिए भारतीय अध्यात्मवाद परम कल्याणप्रद है। इस बात का मुझे गौरव है कि हमारे समाज में मनुष्यों को मर्यादा देते समय हम उसे देवता के स्थान पर बैठाते हैं। उसे हम ईश्वर का अवतार कहने में भी नहीं हिचकते। लेकिन व्यक्तिगत विचार स्वातंत्र्य का महत्त्व हम इतना अधिक समझते हैं कि जिसे हम आज ईश्वर का अवतार कहने में नहीं हिचकते, कल उसे भ्रांत कहने की भी हिम्मत रखते हैं। हमें इस बात का भी अभिमान है कि हमारे ही समाज में आचरण की भी इतनी आजादी है कि यदि पिता बौद्ध है तो पुत्र वेदाचारी हो सकता है, यदि पति शाक्त है तो पत्नी वैष्णवी हो सकती है।"[24]

साम्यवाद और अंतरराष्ट्रीय राजनीति के अतिरिक्त स्वाधीनता संघर्ष की दिशा, समाज, दर्शन और जीवन के अनेक पहलुओं पर शचींद्र एक ऐसे विचारक के रूप में दिखाई देते हैं जो एक ओर भारतीय ज्ञान परंपरा से ओतप्रोत हैं और दूसरी ओर विश्व में चल रहे समसामयिक विमर्श से पूरी तरह परिचित हैं।

भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में क्रांतिकारी संगठन में शचींद्र नाथ सान्याल की भूमिका को अभी तक नजरअंदाज ही किया गया है। शचींद्र नाथ सान्याल में संगठन की अद्‌भुत क्षमता थी। 1913-14 में बनारस में बाढ़ की विभीषिका के दौरान युवा शचींद्र ने अपने साथियों के साथ मिलकर जो राहत और बचाव का कार्य किया उसके मुरीद ब्रिटिश जज भी हो गए। शचींद्र के भाई जितेंद्र नाथ सान्याल के अनुसार बनारस षड्यंत्र के मुकदमे का फैसला सुनाते हुए न्यायाधीश एस.आर. डैनियल्स ने लिखा, ष्यदि शचींद्र को राष्ट्रवाद की मूर्खतापूर्ण भावना में गुमराह नहीं किया गया होता, तो वह सामाजिक कार्यों के प्रति समर्पित एक विश्वसनीय नागरिक के रूप में विकसित हो सकता था।"[25]

उनके साथी क्रांतिकारी विजय कुमार सिन्हा ने उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि इन शब्दों में दी :

"गोली या फाँसी के एक झटके से शहीद होने वाले तो हमारे पूज्य ही हैं, परंतु क्रांति की आरी से तिल-तिल आजीवन चीरे जाने वाले शचीनदा जैसे मृत्युंजयी वीरों के लिए किस किस शब्द का प्रयोग किया जाए? उन्हें मात्र शहीद कहने से मुझे लगता है कि उनके प्रति मैं अपनी असीम श्रद्धा अभिव्यक्त नहीं कर पा रहा हूँ।"[26]

संदर्भ-

1. शचींद्रनाथ सान्याल, बंदी जीवन, पृ. 7
2. वही, पृ. 24
3. वही, पृ. 13
4. संजीव सान्याल, रिवोल्यूशनरीज; द अदर साइड ऑफ हाउ इंडिया वन इट्स फ्रीडम, हार्पर कॉलिन्स, गुरुग्राम, 2023
5. बंदी जीवन, पृ. 14
6. शती स्मृति, क्रांतिदूत शचींद्रनाथ सान्याल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1993, पृ. 20
7. एन.ए.आई. होम पोलिटिकल ए 1918, 179-184, पृ. 76.
8. वही
9. बंदी जीवन, पृ० 9
10. एन.ए.आई. होम पोलिटिकल फाइल 53/1927-के डब्लू, पृ. 40.
11. शचींद्र नाथ बख्शी, अतुलनीय क्रांतिकारी एवं संगठनकर्ता शचींद्रनाथ सान्याल कलाकुंज भारती, जून 2004 अंक, पृ. 16
12. एन.ए.आई. होम पोलिटिकल फाइल 53/1927 के डब्लू
13. वही
14. सत्यम (संपादक), भगत सिंह और उनके साथियों के संपूर्ण उपलब्ध दस्तावेज, राहुल फाउंडेशन, लखनऊ, पृष्ठ 510-516
15. न.ए.आई. होम पोलिटिकल फाइल 53/1927 के डब्लू
16. शचींद्र नाथ बख्शी, अतुलनीय क्रांतिकारी एवं संगठनकर्ता शचींद्रनाथ सान्याल, कलाकुंज भारती, जून 2004 अंक, पृ. 17
17. सुधीर विद्यार्थी (संपादक), विचार विनिमय: शचींद्र नाथ सान्याल, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2019, पृ. बीस
18. रंजीत कुमार सान्याल, 'मेरे पिताजी', कलाकुंज भारती, जुलाई 2003 अंक, पृ. 18
19. एन.ए.आई. होम पोलिटिकल (आई) 43/55/41 1941
20. वही
21. एन.ए.आई.होम पोलिटिकल (आई) 43/55/41 1941
22. शचींद्रनाथ सान्याल, विचार विनिमय, संपादन-सुधीर विद्यार्थी, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2019, पृ. 3-4
23. वही, पृ० 4-6
24. विचार विनिमय, पृ० 7
25. शहीद शचींद्र नाथ सान्याल स्मृति ग्रंथ, 90वाँ जन्मदिवस समारोह, 3 जून 1983, पृ. 2
26. शहीद शचींद्र नाथ सान्याल स्मृति ग्रंथ, 90वाँ जन्मदिवस समारोह, 3 जून 1983, पृ. 19

इमामुद्दीन हुसैन

चौरीचौरा विद्रोह के महान स्वतंत्रता सेनानी सुकई की कहानी

चौरीचौरा कांड को भला कौन भूल सकता है। आजादी की लड़ाई के इस महान अध्याय के महान नायकों में एक हैं सुकई। एक सच्चे नायक की कारुणिक वीरगाथा

पसमांदा समाज से आने वाले सुकई उन महान स्वतंत्रता सेनानियों में से एक हैं जिन्होंने भारतीय समाज के साथ कंधे -से-कंधा मिलाकर आजादी की लड़ाई लड़ी थी। सुकई को असहयोग आंदोलन एवं चौरीचौरा विद्रोह में हिस्सा लेने के कारण फाँसी की सजा हुई थी। चौरीचौरा विद्रोह के इतिहास की चर्चा भारत ही नहीं, विदेशों में भी होती है। लेकिन दुर्भाग्यवश पसमांदा समाज के महान स्वतंत्रता सेनानी सुकई के सपनों एवं उनके बलिदान से भारतीय समाज अभी तक परिचित नहीं हो पाया है। भारत के अशराफ बुद्धिजीवी सिर्फ अशराफ तबके के शहीदों की चर्चा करते हैं लेकिन उन्हें देशज मूल के पसमांदा (अजलाफ-अरजाल) पर चर्चा करना मंजूर नहीं है। वह कभी भूले भटके भी देशभक्त पसमांदा समाज से आने वाले देशप्रेमियों - मौलाना असीम बिहारी, अब्दुल कय्यूम अंसारी, अतीकुर्रहमान मंसूरी, बत्तख मियां को याद नहीं करते और न ही मोमिन कान्फ्रेन्स ["मोमिन कान्फ्रेन्स मुख्यत: सामाजिक रूप से पिछड़े माने जाने वाले मुसलमान कारीगरों, खास तौर पर बुनकरों का प्रतिनिधित्व करती थी। मोमिन कान्फ्रेन्स मुस्लिम जनसमूह के दीन-दलितों की आवाज बनी। यह कारीगरों, शिल्पकारों, मुसलमान समाज के सबसे निचले पायदान के लोगों का संगठन था। वे लगातार अंग्रेज शासकों तथा उच्च जाति के मुसलमानों के दमन के शिकार थे।"[1] "मोमिन कान्फ्रेन्स के 1943 के अधि वेशन की खासियत थी कि हजारों की संख्या में महिलाएँ भी शामिल हुई थीं। दो हजार से अधिक प्रतिनिधि एवं 15 हजार से अधिक सामान्य जन मौजूद थे। पहले पारित प्रस्ताव ने दोहराया कि 4.5 करोड़ मोमिनों का प्रतिनिधि संगठन केवल मोमिन कान्फ्रेन्स ही है।"[2] मात्र यही एक संगठन था जिससे मुस्लिम लीग घबराती थी। "मोमिन कान्फ्रेन्स ने अन्य मुस्लिम मजदूर वर्ग या पिछड़ी जातियों जैसे राईन (सब्जियाँ उगाने और बेचने वाले), मंसूरी (धुनिया), इदरीसी (दर्जी) और कुरैशी (मांस व्यापारी) को एकजुट करने का प्रयास किया।"[3] पापिया घोष के अनुसार - 1934 में केवल बिहार और उत्तर प्रदेश में मोमिन कान्फ्रेन्स की 500 से अधिक कमेटियां थीं।[4]] को। फिर वह सुकई के बलिदान को क्यों याद करेंगे। अशराफ इतिहासकार - सर सय्यद अहमद खां के सिद्धांतों पर चलते हैं जिन्होंने 1857 के संग्राम में इन जातियों को इस हंगामे में सबसे ज्यादा गरमजोश बदजात जुलाहा बतलाया था- "जुलाहों का तार तो बिल्कुल टूट गया था, जो बदजात (बुरी जाति वाले) सबसे ज्यादा इस हंगामे में गर्मजोश (उत्साहित) थे।"[5]

जबकि अशराफ के विपरीत भारतीय समाज अपने शहीदों के जन्मदिवस बिना भेदभाव के मनाती है। 2021 में अभियान संस्था द्वारा चौरीचौरा के शताब्दी वर्ष पर सुकई के जीवन पर नाट्य मंचन भी किया गया था।[6] चौरी चौरा के संघर्ष में फाँसी की सजा पाए 19 क्रांतिकारियों में नजर अली, सुकई, लाल मोहम्मद तीनों पसमांदा समाज से थे।

"अब्दुल्ला उर्फ सुकई[7] पुत्र गोबर, चुड़िहार, उम्र 40 राजधानी, जिला कारागार बाराबंकी। फाँसी तिथि 3 जुलाई, 1923, प्रात: 6 बजे।

नजर अली, पुत्र जीअन, चुड़िहार, उम्र 30, डुमरी खुर्द, केन्द्रीय कारागार, फतेहगढ़। फाँसी तिथि 4 जुलाई, 1923, प्रात: 6 बजे।

लाल मोहम्मद पुत्र हाकिम शाह, सैन, उम्र 40, चौरा, जिला कारागार रायबरेली। फाँसी तिथि

3 जुलाई, 1923 प्रातः 6 बजे।"[8]

फाँसी के सजा से मुक्त हुए 225 अभियुक्तों में से पसमांदा समाज के नाम का उल्लेख इस प्रकार है-

"बड़कू पुत्र वजीर, हज्जाम, उम्र 17, बाढ़न ईदन पुत्र मोहिउद्दीन, जुलाहा, उम्र 17, बिशुनपुरा।

महाबत पुत्र बादल, जुलाहा, उम्र 38, डुमरी खुर्द

नजीर पुत्र झिंगई, धुनिया, उम्र 48, बहरामपुर

परहु पुत्र इमामुद्दीन, जुलाहा, उम्र 60, अजोध्या चौक

रसूल पुत्र इलाही, जुलाहा, पिपराइच, उम्र 22

शहादत पुत्र बदाई, जुलाहा, उम्र 30, डुमरी खुर्द"[9]

"बशीर पुत्र चुनरार, चकिया, चौरा।

तेग अली पुत्र सुक्खू जुलाहा, रकबा छावनी, चौरा।

दीना पुत्र इमामुद्दीन जुलाहा, बिशुनपुर गौरी।"[10]

सिर्फ सुकई ही नहीं उसके जैसे अनेकों पसमांदा वीर सपूतों ने इस देश के लिए बलिदान दिए हैं।

सुकई का जीवन परिचयः-

सुकई का जन्म चौरीचौरा के डुमरी खुर्द से 12 मील की दूरी पर राजधानी गाँव में सन् 1882 में हुआ था [चौरीचौरा स्टेशन से दक्षिण 20 किलोमीटर (तरकुलहा देवी स्थान से दक्षिण-पूरब 8 किलोमीटर की दूरी पर राजधानी गाँव के चुड़िहार टोले में हुआ था)।] सुकई के पिता का नाम गोबर था। वे अपने पैतृक व्यवसाय चूड़ी बनाने से लेकर बेचने तक का कार्य करते थे। (सुबुर्तन[11] के लड़के रोजीद अली[12] का कहना है कि "उस समय हमारे गाँव में चूड़ी बनाने की भट्ठियाँ होती थीं। यहाँ चूड़ी बनती थी एवं आसपास के गाँवों में चूड़ियाँ यहीं से बेची जाती थीं। लगभग 40 साल पहले जब बाजार में सस्ते दर में चूड़ियाँ आने लगीं तो हमारा व्यवसाय धीरे-धीरे बंद होने लगा।"[13] सुकई बचपन से ही अपने पिता के व्यवसाय में हाथ बँटाने लगे थे। गाँव में उनकी खेत की जमीनें भी थीं। लेकिन वे किसानी का कार्य बहुत ज्यादा नहीं करते थे। उस समय उन्हें जमींदारों की जमीनों पर भी बेगार करना पड़ता था। जमींदार उनपर अत्याचार भी करते थे। सुकई कम ही उम्र के थे कि उनके माता-पिता गुजर गये जिससे परिवार का बोझ उनके कंधों पर आ गया। पिता की मृत्यु के बाद उनका व्यवसाय कमजोर पड़ने लगा था। उनका परिवार गरीबी में आ गया था। उनकी पहली पत्नी से उन्हें बच्चे नहीं हो सके थे। उनकी पत्नी अक्सर बीमार रहा करती थीं। कुछ ही वर्षों बाद उनकी पत्नी का भी देहांत हो गया। फिर सुकई की शादी तिलिया से हुई उससे उन्हें रसूल नाम का लड़का हुआ था। तिलिया की आँख शुरू से ही कमजोर थी।

ऐसी ही परिस्थिति में गाँव के जमींदार उनके खेत हड़पने लगे और सुकई की पहली पत्नी की कब्र तक खुदवा दी। उस दौरान सुकई का बाबू लक्ष्मण सिंह और राज बहादुर सिंह से काफी झगड़ा हुआ था। कब्र खुदवाने के विवाद पर जमींदार एवं चमड़े के व्यवसायी सैयद कुर्बान अली से उसे कोई मदद नहीं मिली। उसका परिवार भी गाँव के पसमांदा जातियों से घृणा करता था। वे उन्हें अनेकों तरह से तंग किया करते थे। नजर अली की भी सय्यद कुर्बान अली से

दुश्मनी थी उसने अपनी दया याचिका पर सीधा-सीधा इलजाम सय्यद कुर्बान अली पर लगाया था- "सैयद कुर्बान अली के चाचा मेरी माँ को चुपके से भगा ले गए थे।"[14] ग्रामीण लोग अंग्रेजों के अलावा जमींदारी एवं नवाबी व्यवस्था से भी आतंकित रहते थे। सुकई की दया याचिका से गाँव की स्थिति एवं उसके फंसाए जाने के लिए अशराफ कैसे जिम्मेदार हैं, यह बातें पूरी तरह से स्पष्ट हो जाती है-

"मैं प्रार्थना करता हूँ कि मैंने निश्चय ही, चौरीचौरा दंगा में भाग नहीं लिया। मुझे दुश्मनी के कारण अभियुक्त बनाया गया। खिलाफत आंदोलन में कार्य करने के कारण मुझे सजा दी गई। बाबू लक्ष्मण सिंह और राज बहादुर सिंह (दोनों राजधानी के जमींदार) से मेरी पुरानी दुश्मनी थी। उन्होंने मेरी पत्नी की कब्र खोद कर अपने खेत में मिला लिया था। इस बात को पूरा गाँव जानता है। इन्हीं लोगों के दुश्मनी के वजह से मेरे ऊपर यह मामला चला है। मेरा घर, चौरीचौरा से 12 मील दूर है। मुहम्म्द सिद्दिकी ने गवाही में कहा था कि मेरी तरह के एक आदमी ने दंगे में भाग लिया था, न कि मैंने। डुमरी राज के चौकीदार ने भी कहा था कि मैंने दंगे में भाग नहीं लिया। जगतू पाण्डेय का बयान, सरकारी गवाह सैयद कुर्बान अली से सुनी-सुनाई बात पर आधारित था। इस कांड में 300 के लगभग गवाह थे लेकिन उसके (सय्यद कुर्बान अली) अलावा किसी ने भी मेरा नाम नहीं लिया था। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूँ कि मेरी जिंदगी छोड़ दी जाए।"[15]

यह पत्र सुकई ने 31 मई 1923 को जिला कारागार बाराबंकी से गवर्नर जनरल को लिखा था।

असहयोग आंदोलन और सुकई

डॉ. अनिल श्रीवास्तव[16] के अनुसार - "गोरखपुर के आसपास जब असहयोग आंदोलन की सुगबुगाहट शुरू हुई थी, सुकई का झुकाव स्वतः उस ओर हो गया था। 8 फरवरी 1921 को जब गांधी जी चौरीचौरा होते, गोरखपुर पहुँचे थे तब नजर अली, लाल मुहम्मद, भगवान अहीर और सुकई अपने साथियों के साथ गांधीजी और दूसरे नेताओं के भाषण सुनने गोरखपुर गए थे। सुकई इसके तुरंत बाद पत्नी तिलिया और

दो-तीन साल के बेटे रसूल को छोड़, लगभग 39 वर्ष की उम्र में अहमदाबाद कमाने चले गए थे। दिसंबर 1921 में वहाँ कांग्रेस अधि वेशन में उन्होंने स्वंयसेवक के रूप में भाग लिया था।"[17]

जे.पी रावत जी ने भी यही बात कही है-"8 फरवरी 1921 को महात्मा गांधी ने गोरखपुर के बाले मियां के मैदान में सभा की और नौजवानों से अंग्रेजी हुकूमत को उखाड़ फेकने का आह्वान किया। राष्ट्रपिता के आह्वान पर चौरीचौरा सहित आसपास के दर्जनों गांवों के युवक आजादी की लड़ाई में कूद पड़े।"[18]

उन्होंने फैसला किया कि मैं अपने परिवार के भरण-पोषण हेतु काम करते हुए अपना ज्यादा-से-ज्यादा समय अपने देश की आजादी के लिए लगाऊँगा। काम करने के दौरान जब भी उनके पास समय निकलता वे शहर के राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सा लेते। वे किसान-मजदूर नेताओं की बात बहुत ध्यान से सुनते। उन्होंने वहाँ रहते हुए आजादी की लड़ाई में हिस्सा लेने वाले पार्टियों एवं उनकी राजनीति का ज्ञान हासिल किया। वे भले ही अशिक्षित थे लेकिन उनकी राजनीतिक चेतना काफी बढ़ गई थी। अब वे जनता का नेतृत्व करने में पारंगत हो गए थे। अहमदाबाद में लगभग एक साल रहने के बाद अपने गाँव वापस लौट आए। वे घर पर एक सिलाई मशीन ले आए थे। दर्जी का काम करते हुए उन्हें कुछ ही समय हुए थे कि उन्हें चौरीचौरा संघर्ष में फाँसी की सजा हो गई थी।

अहमदाबाद रहते हुए वे मुस्लिम समाज में जाति-व्यवस्था एवं अशराफ तबके की चालाकियों को समझने भी लगे थे। गाँव में आने पर उनकी झड़प सैयद कुर्बान अली उर्फ शिकारी से हुई थी। शिकारी गाँव के ध नी लोगों में से था। उसके परिवार के लोग पसमांदा जातियों पर अत्याचार किया करते थे। उसकी पत्नी की कब्र को जमींदारों ने अपने खेत में मिला लिया था। इसमें शिकारी की अप्रत्यक्ष रूप से भूमिका थी क्योंकि किसी की कब्र खोदवाना एक धार्मिक मामला है। यह काम अशराफ जाति के साथ हो तो सांप्रदायिक मामला बन जाता है। लेकिन जब यही काम देशज पसमांदा के साथ होता है तो वह नैतिकता की परवाह नहीं करता। वह शत्रुपक्ष के साथ आसानी से खड़ा हो जाता है। नजर अली भी अशराफों के अत्चाचार से पीड़ित थे। उसकी मां के साथ भी बदसलूकी की गई थी। सय्यद कुर्बान अली का चाचा उसे उठा ले गया और उसके साथ दुष्कर्म भी किया था।

गाँव के शोषकों का साथ देने में अंगेजों की पुलिस चौकी का भी हाथ होता था। उस समय पुलिस विभाग के बड़े पदों पर अशराफ जातियों का दबदबा रहता था। "वसी खाँ, मुहम्मद जमा खाँ, मोहम्मद जॉकी, गदा हुसैन, मर्दन खाँ, हसन जान"[19] पुलिस विभाग के बड़े पदों पर थे। डिप्टी एस. पी. खाँ बहादुर सय्यद अशफाक हुसैन[20] की नियुक्ति इसीलिए हुई थी कि पसमांदा तबके को कैसे सजा दिलाई जाए। इसी का परिणाम है कि किसी एक भी अशराफ को फाँसी नहीं हुई, सबके सब बचा लिए गए। यही कारण था कि अशराफों का मन इतना बढ़ गया था कि गाहे-बगाहे बात-बात पर पसमांदा समाज के लोगों को पीटते रहते थे। जब सुकई एवं उसके साथियों ने उनके खिलाफ हो रहे अत्याचार पर आवाज उठाना शुरू किया तो गाँव के अशराफ उनसे नाराज रहने लगे। यही कारण है कि चौरीचौरा में सुकई को फाँसी की सजा दिलवाने में सय्यद कुर्बान अली[21] ने बढ़-चढ़कर भूमिका अदा की थी। उसने सारी नैतिकताओं की हदें पार कर दी थीं। जबकि वह स्वतंत्रता संग्राम में भी खुद शामिल हुआ था। उसके घर एक मीटिंग भी हुई थी।

चौरीचौरा का विद्रोह

अहमदाबाद से गाँव आने पर वह गांधीजी के अहसयोग आंदोलन को गाँव-गाँव तक पहुँचाने के काम में लग गए। 13 जनवरी 1922 को डुमरी खुर्द में मंडल स्थापना के बाद सुकई स्वयंसेवक बन गए थे। जलियांवाला बाग हत्याकांड के बाद पूरे भारत में अंग्रेजों के खिलाफ रोष और गुस्से की लहर फैल गई थी। जनरल डायर ने भीड़ पर गोलियों की बौछार कर दी थी। जिससे सैकड़ों बेगुनाह लोग मारे गए थे। इससे भारतीय युवा पीढ़ी बागी हो गई थी। तब इससे नाराज होकर गांधीजी ने असहयोग आंदोलन शुरू किया था। अंग्रेजी वस्तुओं के बहिष्कार के साथ पूरे देश भर में उनके सामानों की होली जलाई जाने लगी।

सुकई एवं उनके जैसे लोगों को आशा थी कि गांधी जी के असहयोग आंदोलन से हमारी सारी समस्याओं का हल हो जाएगा। अंग्रेजों से हमें आजादी मिलेगी एवं नवाब एवं जागीरदारों के जुल्म से मुक्ति मिलेगी। यही सोचकर उन्होंने गाँव-गाँव घूम-घूमकर असहयोग आंदोलन का प्रचार किया था। वह एवं उनके साथी स्वयंसेवकों (भगवान, बिक्रम, दुधई, कालीचरन, लौटू, महादेव आदि) ने मिलकर कम ही समय में इस आंदोलन का चौरीचौरा के आसपास के गांवों में इतना सघन प्रचार किया कि चौरीचौरा के थाने को फूके जाने के दिन लगभग 3 हजार की भीड़ वहाँ इकट्ठी हो गई थी। जे.पी. रावत जी के अनुसार- चौरीचौरा के मुंडेरा बाजार कस्बे में शनिवार को साप्ताहिक बाजार लगता था जहाँ विदेशी वस्त्रों के साथ मादक पदार्थ, गांजा, भाँग, ताड़ी तथा शराब की खुली बिक्री होती थी। स्वयंसेवक विदेशी वस्त्रों की होली जलाने के साथ मादक पदार्थों की रोकथाम करने लगे। स्वयंसेवकों की कार्रवाई से कुछ पिट्ठू व्यापारी परेशान हो उठे और मामला थाने तक जा पहुँचा। तत्कालीन थानेदार चौरीचौरा के गुप्तेश्वर सिंह ने स्वयंसेवकों को बेइज्जत करने के साथ उनकी पिटाई कर दी। फलस्वरूप मामला बिगड़ गया और कार्यकर्ता उग्र हो उठे। मामला बिगड़ता देख दारोगा को माफी माँगनी पड़ी। सार्वजनिक रूप से माफी माँगना दारोगा को खल गया और उसने स्वयंसेवकों को सबक सिखाने की ठान ली।"[22] दारोगा ने चौकीदारों को लाठीचार्ज का आदेश दे दिया। चौकीदारों ने भीड़ पर लाठियाँ बरसानी शुरू कर दीं। इस कार्रवाई से स्वयंसेवक भागकर पटरी के किनारे खड़े हो गए। फिर चौकीदारों ने फायरिंग शुरू कर दी। जवाब में सुकई भी दारोगा एवं सिपाहियों को पीटने में शामिल हुआ। अपने बचाव के मद्देनजर स्वयंसेवकों ने थाने से दूर जाकर रेलवे पटरियों पर बिछे पत्थर उठाकर अंग्रेज सिपाहियों पर बरसाना शुरू कर दिया। इसके बाद जो 2000 की भीड़ वापस चली गई थी वह वापस आ गई। सिपाहियों पर उन्होंने हमला बोल दिया। डर के मारे पुलिसकर्मी थाना भवन में जाकर छिप गए। उन्होंने अंदर से ताला बंद कर

दिया। यही उनके लिए जानलेवा साबित हुआ। उस भवन में आग लगा दिया गया। थाने में छिपे हुए सारे लोग जल कर मर गए। जो सिपाही बाहर थे उन्हें खोज-खोज कर पीटा जा रहा था। मुहम्मद सिद्दीकी की जान बच गई। उसने अपने सिपाही वाले कपड़े उतारकर फेंक दिया ताकि लोग उसे पहचान न सके। आगे चलकर इसने दोषियों को सजा दिलाने में अंग्रेजों का साथ दिया। सैयद कुर्बान अली जो खुद स्वयंसेवक था आसानी से सरकारी गवाह बन गया। जिसने अपनी जिंदगी की कीमत पर जाने कितनी जिंदगियाँ लीं।

चौरीचौरा विद्रोह के लिए 224 लोगों को फाँसी का अभियुक्त बनाया गया था। मदन मोहन मालवीय ने इन अभियुक्तों का मुकदमा लड़ा था। 151 लोग फाँसी की सजा से बचा लिए गए। 19 लोगों को 2 से 11 जुलाई, 1923 के दौरान फाँसी दे दी गई। इस घटना में 14 लोगों को आठ वर्ष सश्रम कारावास की सजा हुई। लेकिन सुकई, नजर अली और लाल मोहम्मद को नहीं बचाया जा सका। जबकि जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष सुभानुल्लाह, जो जमींदार अशराफ तबके से थे, उनके निर्देश पर चौरीचौरा में सत्याग्रह का आयोजन किया गया था। (मौलवी सुभानुल्लाह पुत्र मौलवी जाकाउल्लाह, जाफरा बाजार, गोरखपुर, उस समय के प्रमुख जमींदारों में से एक थे। उनके पूर्वज अंग्रेजों के भक्त थे। 1857 के विद्रोह में अंग्रेजों का साथ देने के कारण उनको 52 गांवों की जमींदारी इनाम में मिली थी।[23] उनका सरकारी लगान माफ था। वह 19000 रु. मासिक राजस्व पाते थे।[24]) कोई भी अशराफ पसमांदा समाज के लिए आगे नहीं आया। जबकि उल्टा अशराफों ने पसमांदा को सजा दिलाने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी। गांधी जी 15 दिनों तक उनके घर रूके हुए थे। लेकिन वहाँ से कोई भी आश्वासन नहीं आया।

डिप्टी एस. पी. खाँ बहादुर सय्यद अशफाक हुसैन (जिसे लोग मोटा साहब नाम से पुकारते थे) को चौरा नियुक्त किया गया था। पसमांदा स्वयंसेवकों को आशा थी कि वे हमारे लिए बेहतर सरकारी गवाह ढूंढ लेंगे। लेकिन उन्होंने ठीक उल्टा किया। ब्रिटिश सरकार से मिलकर मंत्रणा की कि इस आंदोलन में शामिल देशज पसमांदा को सजा दिलवाएंगे।

इस प्रकार सैयद अशफाक हुसैन, मुहम्मद सिद्दीकी और सैयद कुर्बान अली उर्फ शिकारी आपस में जातीय रूप से एक हो गए। एक अन्य स्वयंसेवक ठाकुर अहीर को सरकारी गवाह बनाया गया। अशफाक हुसैन ने सुकई के खिलाफ गवाही देने के लिए पैसे भी दिए थे। "सैयद कुर्बान अली के स्वयंसेवकों के खिलाफ बढ़-चढ़कर बयान देने पर सेशन कोर्ट ने यह माना था कि जो व्यक्ति पहले सक्रिय स्वयंसेवक था, अपने गवाहों को कमतर दिखाने के लिए बढ़-चढ़कर अपने साथियों के खिलाफ गवाही दे रहा है।"[25] सुकई ने दया याचिका ब्रिटिश सरकार को भेजी थी लेकिन उस पर सरकार ने ध्यान नहीं दिया। उसकी फाँसी की सजा नहीं रोकी जा सकी। उसमें सैयद कुर्बान अली की झूठी गवाही एवं मुहम्मद सिद्दीकी के संदेहास्पद बयान को गलत बताया था।

सुकई को अंतिम समय में अपने राजनीतिज्ञों पर से भरोसा उठ गया था। उसने देखा कि कैसे कांग्रेस धनी जमींदारों से मिल गई है। वह उन स्वयंसेवकों को, जो धनी एवं रसूख वाले हैं, अपने प्रभाव का इस्तेमाल करके सजा से कैसे मुक्त करा रही थी। गांधी जी के असहयोग आंदोलन के वापस लिए जाने की तो उसने कल्पना भी नहीं की थी। सबसे बड़ी बात यह थी कि जो कांग्रेस का कार्यकर्ता था, उसे कांग्रेस से कोई भी मदद नहीं मिली। जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष, जो जमींदार भी थे, उन्होंने उसे बचाने की कोई कोशिश भी नहीं की। सचमुच सुकई का अंत बहुत ही दर्दनाक एवं हृदयविदारक था। वह केवल अंग्रेजों से ही नहीं, अपने घर के शत्रुओं के षड़यंत्र का भी शिकार हुआ। अंततोगत्वा सुकई की फाँसी को टाला नहीं जा सका। सुकई को फाँसी के बाद उसकी पत्नी एवं बच्चे को उत्पीड़न का सामना करना पड़ा। सुकई को बाराबंकी के जिला कारागार में 3 जुलाई 1923 को प्रातः 6 बजे फाँसी दे दी गई।

फाँसी के बाद तीलिया बाराबंकी गई थीं, लेकिन शहीद पति की लाश वे गाँव नहीं ला सकीं। कारागार में ही उसके पति को दफना दिया गया था। सुकई की मृत्यु के बाद उसे बहुत ही कठिनाइयों भरा जीवन बिताना पड़ा था। अंग्रेजों ने उनके घर को ढहा दिया था। बेघर होकर उन्होंने किस यातना से जीवन बिताया, उस इतिहास को बतलाने वाला आज कोई नहीं है। सुकई के पुत्र रसूल उस समय 3 साल के ही थे कि उनके ऊपर घर की जिम्मेदारी आ पड़ी थी। रसूल के बारे में हमने जानने की चेष्टा की लेकिन उनके बारे में ज्यादा जानकारी हासिल नहीं हो पाई है।

चौरीचौरा विद्रोह के लिए 224 लोगों को फाँसी का अभियुक्त बनाया गया था। मदन मोहन मालवीय ने इन अभियुक्तों का मुकदमा लड़ा था। 151 लोग फाँसी की सजा से बचा लिए गए। 19 लोगों को 2 से 11 जुलाई, 1923 के दौरान फाँसी दे दी गई। इस घटना में 14 लोगों को आठ वर्ष सश्रम कारावास की सजा हुई। लेकिन सुकई, नजर अली और लाल मोहम्मद को नहीं बचाया जा सका। जबकि जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष सुभानुल्लाह, जो जमींदार अशराफ तबके से थे, उनके निर्देश पर चौरीचौरा में सत्याग्रह का आयोजन किया गया था

सुकई के परिवार की स्थिति

बीते 13 अगस्त 2023 को सुकई के गाँव में उनके परिवार से मिलना हुआ। उनका मकान अभी अर्धनिर्मित एवं जर्जर अवस्था में है। मकान देखकर ही इस परिवार की गरीबी का अंदाजा सहज ही लगा सकते हैं। यहाँ के निवासी शम्सुदीन मनीहार ने बताया कि अभी जल्द ही सरकार की ओर से इनके घर के लिए रास्ता बना है। यहाँ पहुँचने के लिए लोगों को काफी मशक्कत उठानी पड़ती थी। यहाँ पास के सरकारी स्कूल की मदद से इस गाँव का नाम अब्दुल्ला टोला रखा गया है।

यहाँ आकर इस बात का दु:ख हुआ कि कल तक सुकई के नाम से मशहूर इस स्वतंत्रता सेनानी को देशज के बजाय धार्मिक नामकरण से प्रचारित किया जा रहा है। एक प्रकार से यहाँ के लोगों का अशराफीकरण किया जा रहा है।

रसूल पुत्र सुकई की पुत्री सुबुर्तन की बहू बेबी खातून (मझले पुत्र सौदागर की पत्नी) से मेरी एवं मेरे एक साथी जे.एन.शाह की मुलाकात हुई। उन्होंने हमें बताया कि ''सुबुर्तन जी का 6 अगस्त 2021 को देहांत हो गया। पिछले एक साल से उन्होंने चूड़ी बेचने का काम बंद कर दिया था। क्योंकि उन्हें चलने-फिरने में दिक्कत होने लगी थी। उन्होंने घूम-घूम कर चूड़ी बेचकर अपने बच्चों रौजिद अली, सौदागर और अख्तर अली की किसी तरह परवरिश की। आर्थिक तंगी के कारण वे अपने बच्चों को हाईस्कूल तक भी शिक्षा नहीं दे सकीं। सुबुर्तन के पति शहादत ठेला चलाकर आजीविका कमाते थे। गत 9 माह हुए उनका भी देहांत हो गया। अत्यधिक गरीबी के कारण उनके बच्चों ने मजदूरी का काम शुरू किया। वर्तमान समय में सुबुर्तन के दो लड़के पुणे में और एक लड़का घर के आसपास के इलाके में मजदूरी का कार्य करता है। यहाँ अक्सर लोग आते-जाते रहते हैं। लेकिन अब तक किसी को भी सरकारी मदद नहीं मिली। बस एक बार माता जी को रेल से यात्रा करने के लिए पास मिला था। मेरी माता जी (सास) सरकारी सहायता एवं पेंशन के लिए दिल्ली तक कई-कई बार गई लेकिन किसी ने उनके परिवार के लिए कुछ नहीं किया।''

देश के सामाजिक संगठनों एवं भारत सरकार से भी गुजारिश है कि वह पसमांदा समाज से आने वाले स्वतंत्रता सेनानियों पर वृहत्तर शोधकार्य करवाकर इनके इतिहास को भारतीय जनमानस में लाएँ, क्योंकि अशराफवाद के कारण सिर्फ सुकई ही नहीं पसमांदा समाज से आने वाले अनेक स्वतंत्रता सेनानियों के इतिहास पर पूरी तरह से पर्दा पड़ा हुआ है।

संदर्भ

1. थामस लॉ, सेन्ट्रल इंडिया: ड्यूरिंग द रीबेलियन ऑफ 1857 ऐंड 1858: ए नरेटिव ऑफ आपरेशंस ऑफ द ब्रिटिश फोर्सेज फ्रॉम द सेपरेशन ऑफ म्यूटिनी इन औरंगाबाद टू द कैप्चर ऑफ ग्वालियर अंडर मेजर जनरल सर हफ रोज, जीसीबी, ऐंड ब्रिगेडियर सर टू स्टुअर्ट, के.सी.बी. लांगमैन, लंदन, 1860, पृ. 357-358।
2. शम्शुल इस्लाम,भारत-विभाजन विरोधी मुसलमान - देशप्रेमी मुसलमानों की अनकही दास्तान-पृ.186।
3. पापिया घोष, मुहाजिर्स ऐंड दन नेशन: बिहार इन द फोर्टीज, रूटलेज, दिल्ली, 2010, पृ.28
4. वही, पृ. 346-47।
5. पेज नं0 37, सर सय्यद अहमद खाँ, असबाबे बगावते हिंद, प्रकाशक मुस्तफा, प्रेस लाहौर।
6. "इस वजह से कूदे थे शहीद अब्दुल्ला (सुकई) : इनकी चूड़ी बेचने से विद्रोही बनने तक की कहानी" अमर उजाला, 4 फरवरी, 2021,विवेक शुक्ला।
7. दूर दराज के लोग उन्हें सुकई जुलाहा के नाम से भी जानते हैं। सुभाष चंद्र कुशवाहा और डॉ. अनिल श्रीवास्तव के अनुसार वे चुरिहार जाति से हैं वे मुकदमें के दस्तावेज को प्रमाण मानते हैं।इस संबंध में मैंने आस मोहम्मद अंसारी भूतपूर्व राज्य सभा सांसद से भी बात की उनके अनुसार - सुकई जुलाहा जाति से थे।
8. राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, गृह विभाग, न्यायिक शाखा, पत्रावली 362/1923 जिला एवं सत्र न्यायालय, गोरखपुर के अभिलेखागार में रखे चौरीचौरा रेकार्ड के अनुसार। इसका प्रमाण सेशन कोर्ट अभिलेखागार में भी मौजूद है।
9. Session trial Nos. 44 and 45 of 1922. Judgement
10. 24 मार्च, 1923 को लोअर कोर्ट द्वारा मुक्त हुए। चौरीचौरा विद्रोह और स्वाधीनता आंदोलन, सुभाष चंद्र कुशवाहा, पेज. 331 से साभार।
11. सुबुर्तन सुकई की पौत्री हैं। इनका देहांत 6 अगस्त 2021 को हुआ है।
12. रौजिद अली सुबुर्तन के तीन लड़कों (अख्तर अली, सौदागर,रौजिद अली) में सबसे छोटे हैं। सभी लड़के मजदूरी कर जीवन यापन कर रहे हैं।
13. 13 अगस्त 2023 सामाजिक कायकर्ता, सांस्कृतिक एवं रंगकर्मी जे. एन शाह से रौजिद अली की बातचीत पर आधारित।
14. चौरी- चौरा विद्रोह और स्वाधीनता आंदोलन, पृ. 260।
15. वही, पृ. 260।
16. डॉ. अनिल श्रीवास्तव ''चौरीचौरा का स्वातन्त्रय समर'' के लेखक हैं।
17. डॉ. अनिल श्रीवास्तव ''चौरीचौरा का स्वातन्त्रय समर'' पृ. 24।
18. 16 जनवरी 2023, अपने ही गाँव में गुमनाम चौरीचौरा काण्ड के नायक अबुल्लाह उर्फ सुकई की कहानी- जे.पी रावत का संपादकीय लेख।
19. चौरी- चौरा विद्रोह और स्वाधीनता आंदोलन, पृ. 296।
20. सय्यद कुर्बान अली बड़े व्यापारियों में से एक था। वह अक्सर बताता था कि 1857 की लड़ाई में उसके परिवार को काफी नुकसान उठाना पड़ा था। इसके बावजूद भी व्यवसाय के पश्चात वह बहुत बड़े जमीन का मालिक भी था। सुभाष चंद्र कुशवाहा का कहना है- सय्यद कुर्बान अली प्रति एकड़, प्रति वर्ष चार से पांच रुपए के हिसाब से कुल रू. 37 लगान चुकाता था। डुमरी के जागीरदार से, डुमरी खुर्द के धनी मुसलमानों के बेहतर संबंध थे। सुकई ने दया याचिका में शिकारी का उल्लेख भी किया है जिसमें शिकारी ने उसे फंसाने की पूरी कोशिश की।
21. फरवरी को बहराइच डिप्टी एस. पी. और कार्यवाहक एस.पी. खाँ बहादुर सय्यद अशफाक हुसैन (जिसे लोग मोटा साहब नाम से पुकारते थे।) को चौरा बुलाकर जांच की बागडोर इसलिए सौंपी थी क्योंकि अशफाक उनके प्रिय थे और डी.आई.जी. को उनको आशा थी की वह बेहतर गवाह ढूँढ निकालेंगे...। एविडेंस फार प्रासीक्युशन, पृ.671, डिप्टी एस.पी. अशफाक हुसैन की गवाही।
22. 16 जनवरी 2023, अपने ही गाँव में गुमनाम चौरीचौरा काण्ड के नायक अबुल्लाह उर्फ सुकई की कहानी- जे.पी रावत का संपादकीय लेख।
23. रविवार, सितंबर 27, 1981, पृ.21।
24. एविडेंस फार प्रासीक्युशन, पृ.554।
25. चौरीचौरा विद्रोह और स्वाधीनता आंदोलन, लेखक सुभाष चंद्र कुशवाहा,पृ.230।

दीपेश चतुर्वेदी

मगफूर अहमद ऐजाजी एक विस्मृत मुस्लिम स्वतंत्रता सेनानी

यद्यपि मुस्लिम लीग मुस्लिम हितों की चैंपियन होने का दावा करती थी, लेकिन वह एकमात्र मुस्लिम संगठन नहीं था जो स्वतन्त्रता से पूर्व सक्रिय था। ऐसे संगठन और व्यक्ति भी थे जो मुस्लिम लीग के उद्देश्य के विरुद्ध और स्वतंत्र और अखंड भारत के पक्ष में काम कर रहे थे। ऐजाजी उनमें से एक थे

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में मुसलमानों की भागीदारी विभिन्न प्रकार की राय और दृष्टिकोण से अनुप्राणित थी। आम धारणा के विपरीत, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का मुकाबला करने और उभरती राष्ट्रीय चेतना को सांप्रदायिक आधार पर विभाजित करने के लिए 1906 में स्थापित अखिल भारतीय मुस्लिम लीग, भारत में सभी मुसलमानों के हितों और भावनाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी। मुख्य रूप से इसने, विशेषत: संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश), बॉम्बे प्रेसीडेंसी (अब महाराष्ट्र), और बंगाल में, जमींदार और व्यापारिक वर्गों से जुड़े उर्दू भाषी शिक्षित मुस्लिम अभिजात वर्ग के हितों को पूरा किया। यह एक तथ्य है कि मुस्लिम ब्रिटिश भारत की जनसँख्या के बीस प्रतिशत से अधिक थे, लेकिन 1892 से 1909 के बीच, लेकिन कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में उनका प्रतिनिधित्व लगभग छह प्रतिशत ही था, जो 1923 तक और गिरकर लगभग साढ़े तीन प्रतिशत ही रह गया था।[1]

इसलिए जब अधिकांश मुस्लिम जन नेताओं ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से दूर रहने का फैसला किया, तब भी बदरुद्दीन तैयबजी, रहमतुल्ला सैनी (दोनों कांग्रेस अध्यक्ष बने), मौलाना शिबली नोमानी, मौलाना रशीद अहमद गंगोई, मौलाना सुल्फुल्ला और मोल्ला मोहम्मद शिराजी जैसे मुसलमानों की एक बड़ी संख्या ने कांग्रेस के शुरुआती दौर में स्वयं को इसके प्रति समर्पित किया था।[2] बंगाल के कई मुस्लिम नेताओं जैसे सेंट्रल मोहम्मडन एसोसिएशन के नवाब अमीर हुसैन, अब्दुल अहमद यूसुफ जिलानी, अब्दुल रसूल और लियाकत हुसैन ने प्रांत के विभाजन का विरोध किया था।[3] बाद के दशकों में, एम. ए. अंसारी, अबुल कलाम आजाद, तसद्दुक अहमद खाँ शेरवानी, रफी अहमद किदवई और सैयद महमूद जैसे मुस्लिम राष्ट्रवादियों के एक चुनिंदा समूह ने अपने सह-धर्मवादियों के बढ़ते दबाव के बावजूद कांग्रेस में अपने समुदाय का प्रतिनिधित्व किया। चालीस के दशक के मध्य तक, एक अलग मुस्लिम राज्य (पाकिस्तान) के लिए मुस्लिम लीग के समर्थन ने गति पकड़ ली। 1946 के प्रांतीय विधानसभा चुनावों में, मुस्लिम लीग, मुस्लिम मतदाताओं के एक बड़े हिस्से को जीतने और उनका समर्थन हासिल करने में सक्षम रही। अतएव मुस्लिम लीग को कुलीन मुस्लिमों का भरपूर समर्थन प्राप्त था, और प्रतिबंधित सामान्य मताधिकार के तहत उसे मिले लाभ ने उसके लिए चुनाव जीतना संभव बना दिया। 1935 के अधिनियम की छठी अनुसूची द्वारा आरोपित प्रतिबंधित मताधिकार, जिसने कर, संपत्ति और शैक्षिक आवश्यकताओं के माध्यम से छोटे व्यापारियों और डीलरों, किसानों और अनगिनत अन्य लोगों के विशाल बहुमत को रजिस्टर से हटा दिया, के कारण इसने शानदार जीत हासिल की।[4] फिर भी, यह अभी भी सभी मुसलमानों, विशेषकर हाशिए पर रहने वाले और श्रमिक वर्ग के मुसलमानों के विचारों को जीत नहीं पाई। लाखों मुसलमान भारत में ही रह गये और उन्होंने विभाजन का समर्थन नहीं किया।

खेद की बात है कि जिन राष्ट्रवादी मुस्लिम नेताओं ने अलगाववाद का विरोध किया और धारा के खिलाफ काम किया, उन्हें इतिहास में उचित स्थान नहीं मिला। यह स्वतंत्र भारत के इतिहास का सबसे दुर्भाग्यपूर्ण प्रकरण है कि शासन और सत्ता में बैठे लोगों ने कई राष्ट्रीय नायकों को उचित श्रेय और स्वतंत्रता संग्राम की गाथा में

उनका उचित स्थान नहीं दिया। अधिकांश समय वे गुमनाम ही रहे। राष्ट्रवादी मुसलमानों के नेतृत्व में कई समूह थे जिन्होंने लीग के विभाजन के एजेंडे का पूर्णत: बहिष्कार किया। ऐसी प्रवृत्ति रही है कि मुस्लिमों की स्वतंत्रता संग्राम में भागीदारी मुस्लिम लीग की छत्रछाया में एक भीमकाय प्रकरण के रूप में दर्शाया गया जिसके कारण विभाजन हुआ। लेकिन ऐसे कई उदाहरण हैं जो कुछ और ही कहानी बयां करते हैं। शिबली नोमानी (1857-1914) ने सर सैयद अहमद खाँ की उनके उस अलोकतांत्रिक रुख के लिए आलोचना की कि मुसलमानों को खुद को कांग्रेस और राजनीति से दूर रखना चाहिए क्योंकि इससे समाज के निचले वर्ग का उभार होगा जो कुलीनों पर शासन करेंगे। शकतुल्लाह अंसारी एक अग्रणी राष्ट्रवादी मुस्लिम थे नेता जिन्होंने पाकिस्तान: द प्रॉब्लम ऑफ इंडिया प्रकाशित किया, जिसमें यह माना गया कि बहुसंख्यक मुसलमानों ने पाकिस्तान की मांग को आगे नहीं बढ़ाया। इसके अलावा, "ऑल इंडिया मुस्लिम लीग भारत के मुसलमानों का एकमात्र आधिकारिक और प्रतिनिधि राजनीतिक संगठन नहीं है...जहाँ मुसलमान बहुमत में हैं और पाकिस्तान की स्थापना की जानी है वहां लीग सबसे कमजोर है।"[5] साथ ही और भी कई संगठन और व्यक्ति जैसे अल्लाह बख्श, खाँ अब्दुल गफ्फार खाँ, अब्दुल्ला बरेलवी, मोमिन सम्मेलन, अखिल भारतीय मुस्लिम माजिलिस और अंजुमन-ए-वतन (बलूचिस्तान) आदि थे जिनका मुस्लिम लीग के भारतीय मुसलमानों का एकमात्र प्रतिनिधि होने के दुष्प्रचार के आगे नाम अपरिचित ही रह गया। मगफूर अहमद ऐजाजी के नेतृत्व में अखिल भारतीय जम्हूर मुस्लिम लीग जैसी संस्थाएँ थीं जिन्होंने जिन्ना के द्विराष्ट्र सिद्धांत का विरोध किया था।

इन व्यक्तियों के अलावा कई उर्दू शायरों ने लीग द्वारा प्रचारित इस गुबार, कि हिंदू भारत में मुसलमानों के लिए कोई जगह नहीं है, को निरस्त करने के लिए भरपूर कार्य किये। शमीम करहानी जैसे कई कवि थे जिन्होंने पाकिस्तान की आवश्यकता को अस्वीकार किया:-

नाम-ए-पाकिस्तान न ले गर तुझको पास-ए-दीन है
ये गुजिश्ता नस्ल-ए-मुस्लिम की बड़ी तौहीन है।
(यदि तुझे अपने दीन के लिए जरा सी भी इज्जत है तो पाकिस्तान का नाम न ले, क्योंकि पाकिस्तान की मांग करना अपने मुस्लिम पूर्वजों का घोर तिरस्कार है)

टुकड़े टुकड़े कर नहीं सकते वतन को अहले-दिल
किस तरह ताराज देखें गे चमन को अहले-दिल।[6]
(जिनके पास समझदार दिल है वे देश को विभाजित नहीं कर सकते, और वे मातृभूमि को बर्बाद और लुटा देखने की हिम्मत कैसे करेंगे?)

कई राष्ट्रवादी मुस्लिमों ने अलगाववाद के विरुद्ध आवाज उठाई लेकिन वे असफल रहे। इसके कई कारण हो सकते हैं लेकिन सबसे प्रमुख था मुस्लिम लीग को ब्रिटिश शासन का सक्रिय समर्थन और उनका आतंक का प्रयोग। इसके अलावा, क्रमश: 1928 और 1936 में हकीम अजमल खाँ और डॉ. एम.ए. अंसारी की अप्रत्याशित मृत्यु, और 1943 में अल्लाह बख्श की हत्या, जिसका अर्थ था कि संघर्ष के घोरतम समय में ये दिग्गज चले गए, ये दोनों घटनाएँ राष्ट्रवादी मुसलमानों के उद्देश्य को चोट पहुँचाती हैं।[7] इसके अलावा, महात्मा गांधी ने जिन्ना को कायदे -आजम (महान नेता), जो अभी तक केवल स्थानीय उर्दू समाचार पत्र में ही प्रयोग होता था, के रूप में स्वीकार करके भारी भूल की।[8]

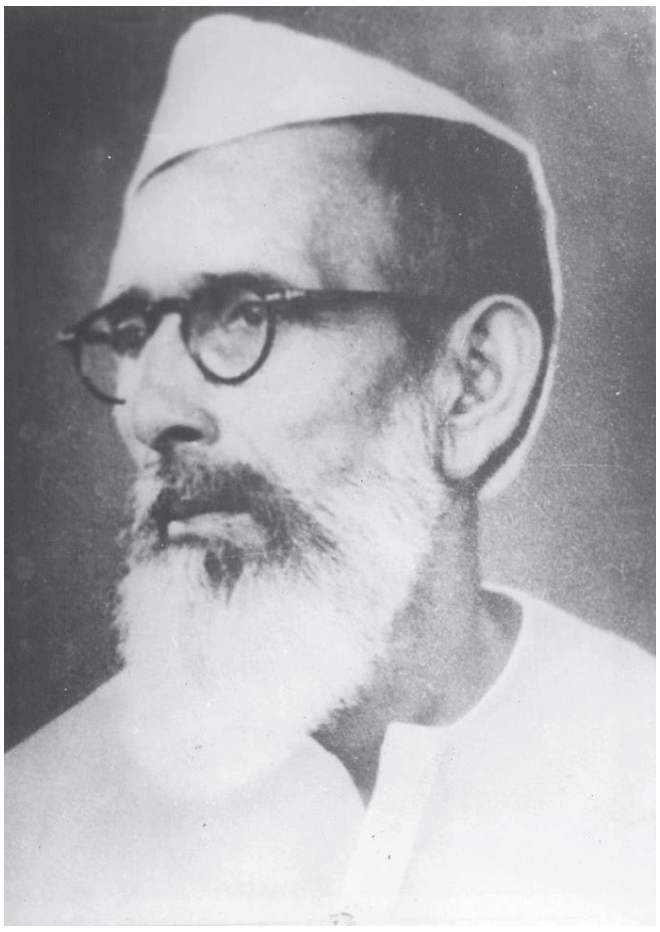

मगफूर अहमद ऐजाजी (1900-66)

मगफूर अहमद ऐजाजी भारत की आजादी के आंदोलन में विस्मृत मुस्लिम नायकों का एक अच्छा उदाहरण हैं। वह बिहार के व्यापक जन अपील और कद वाले मुस्लिम स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्होंने आजादी के बाद भी स्वतंत्रता संग्राम और रचनात्मक कार्यक्रमों के लिए अथक प्रयास किया लेकिन इतिहास उनके प्रति बहुत निर्मम रहा। टाइम्स ऑफ इंडिया ने 15 अगस्त 1992 को लिखा, ष्इतिहास उनके प्रति निर्मम रहा है। एक व्यक्ति जिसने आजादी के लिए अली बन्धु, मौलाना आजाद, और सी. राजगोपालाचारी जैसे दिग्गजों के साथ कष्ट साझा किया उसे 1947 के बाद अपने समकालीनों के मार्ग में आने वाली प्रशंसा में भागीदार होने का अवसर न मिला।[9]

1966 में उनके निधन के बाद राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद ने स्वतंत्रता संग्राम में उनके योगदान को इस प्रकार याद

किया "वे भारत के स्वतंत्रता संग्राम में सबसे आगे थे। उनके जीवन की कहानी देश के एक महत्वपूर्ण युग की अनूठी और रोचक गाथा है।[10] उनके निधन के बाद आचार्य जे. बी. कृपलानी ने कहा, "डॉ. ऐजाजी एक अद्भुत दोस्त के साथ ही एक प्रतिभाशाली देशभक्त और मानवतावादी थे। उनके जैसे निस्वार्थ देशभक्तों की संख्या घट रही है। समाज के लिए, उसका निधन एक हानि है"[11] दूसरी ओर, स्वतंत्रता संग्राम में उनकी गाथा बहुत लंबे समय तक किसी के धयान में तब तक नहीं आई जब तक कि भारत सरकार ने अंततः आजादी के *अमृत महोत्सव* की पूर्व संध्या पर उन्हें भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के गुमनाम नायकों में से एक के रूप में मान्यता नहीं दे दी। इसके अतिरिक्त, दिल्ली के लाल किले में आजादी के दीवाने संग्रहालय में उनके चित्र के नीचे यह भी जोड़ा गया ख़ "जिन्ना के द्विराष्ट्र सिद्धांत का विरोध किया और इससे लड़ने के लिए अखिल भारतीय जम्हूर मुस्लिम लीग का निर्माण किया"।[12]

मगफूर अहमद ऐजाजी का जन्म 3 मार्च 1900 को वर्तमान बिहार के तिरहुत प्रमंडल के मुजफ्फरपुर जिले के छोटे से गाँव दिहुली में हुआ था। फजले रहमान गंज मुरादाबादी के खलीफा मौलवी ऐजाज हुसैन बदायुनी के शागिर्द होने के कारण उन्होंने 'ऐजाजी' नामक पदवी ग्रहण की।[13] उनके पिता मौलवी हाफिजुद्दीन हुसैन उस क्षेत्र के एक अमीर जमींदार थे और उन्होंने बचपन से ही उनमें उनमें देशभक्ति की भावना भर दी जिसके कारण उन्होंने किसानों को संगठित किया और नील की खेती कराने वाले यूरोपीय लोगों के खिलाफ विद्रोह किया। जब वे युवा ही थे तभी उनकी माँ का देहांत हो गया। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा स्थानीय मदरसे में प्राप्त की और फिर आगे की पढाई के लिए दरभंगा के नॉर्थ ब्रुक जिला स्कूल चले गए। बहुत छोटी उम्र से ही उन्होंने औपनिवेशिक राज्य की क्रूर दमनकारी नीतियों के खिलाफ विरोध प्रदर्शनों और मार्च में भाग लिया और आयोजित भी किये। इसीलिए 1919 के रोलेट एक्ट के खिलाफ विरोध करने पर उन्हें स्कूल से निष्कासन तक का सामना करना पड़ा। बाद में, उन्होंने पूसा हाई स्कूल से मैट्रिक पास किया और उच्च अध्ययन के लिए पटना के बिहार नेशनल कॉलेज में प्रवेश लिया। पटना के अपने कॉलेज में उन्होंने असहयोग आंदोलन के लिए स्वयंसेवी दल का गठन किया और उसके बाद अपनी पढ़ाई का बहिष्कार करके स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लिया। प्रजापति मिश्र और खलील दास चतुर्वेदी (दोनों बिहार विधानसभा में विधायक बने) ने भी अपनी पढ़ाई का बहिष्कार कर उनके साथ हो गये। अपने कलकत्ता प्रवास के दौरान, उन्होंने चिकित्सा के अध्ययन में तीव्र रूचि दिखाई और कलकत्ता होम्योपैथिक चिकित्सा कॉलेज से डिग्री प्राप्त की।[14] उनके बड़े भाई मौलाना मंजूर अहसान भी एक स्वतंत्रता सेनानी थे जो उनके साथ अंत तक खड़े रहे।

मगफूर अहमद का विवाह अजीजुल फातिमा से हुआ था। उन्होंने अपने विवाह समारोह का उपयोग स्वदेशी के विचार को प्रचारित करने के लिए एक राजनीतिक उपकरण के रूप में किया, जिसमें स्थानीय हस्तशिल्प उद्योग के महत्व को प्रचारित करने हेतु दूल्हे और दुल्हन ने हाथ से बनी खादी के कपड़े पहने थे। निकाह समारोह के पश्चात, वह कार्यक्रम संघर्ष की भावी रुपरेखा और पैंतरेबाजी पर चर्चा के लिए एक सार्वजनिक बैठक के रूप में परिवर्तित हो गया था। आजादी और भारत माता के नारे भी लगाये गए।[15]

1921 में वे मुजफ्फरपुर जिला कांग्रेस समिति में शामिल हो गए और मुजफ्फरपुर शकरा थाना (सर्कल) कांग्रेस समिति की स्थापना की, और थाना इकाई के सचिव के रूप में कार्य किया। उनके सकारात्मक प्रयासों के परिणामस्वरूप पुलिस का छापा पड़ा और असहयोग आंदोलन के उत्कर्ष के दौरान 11 दिसंबर, 1921 को औपनिवेशिक शासन द्वारा उनके खिलाफ मामला दर्ज किया गया। बाद में, उन्होंने बिहार प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के एक प्रतिनिधि के रूप में कांग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन में भाग लिया जिसकी अध्यक्षता हकीम अजमल खाँ द्वारा की गई थी। यही पर हसरत मोहानी द्वारा 'पूर्व स्वातंत्र्य' का संकल्प प्रस्तुत किया गया था जिसका उन्होंने समर्थन किया था। यहां उन्होंने खिलाफत कमेटी के विभिन्न नेताओं से मुलाकात की और 'अंगोरा फंड' के रूप में 150000 रुपये की धनराशि एकत्रित कर टर्की का समर्थन किया। इसके अलावा, उन्होंने अपनी निजी अपील द्वारा भी 11000 रुपये एकत्रित किये।[16] खिलाफत आंदोलन में अपनी भागीदारी के दौरान वह अली बंधुओं के निकट आ गये। मौलाना आजाद शुभानी और अब्दुल माजिद दरियाबादी के साथ मिलकर वे सेंट्रल खिलाफत समिति के संस्थापक सदस्य बने। साथ ही, अहमदाबाद में अखिल भारतीय कॉलेज सम्मेलन में उन्होंने चेयरपर्सन सरोजिनी नायडू द्वारा छात्र स्वयंसेवक दल बनाने के प्रस्ताव का भरपूर समर्थन किया और फिर 'ऐजाजी ट्रूप्स' (सैन्य टुकड़ी) और कांग्रेस सेवा दल का आयोजन किया गया, जिन्होंने क्रूर औपनिवेशिक नीतियों के खिलाफ जनता को सक्रिय रूप से शिक्षित किया और मुजफ्फरपुर और उत्तर बिहार के आसपास के क्षेत्र में कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम का सक्रिय समर्थन किया। अहमदाबाद में उनकी महात्मा गांधी से भी मुलाकात हुई जिन्होंने उन्हें देशभक्ति के रूप में दलितों और मानवता की सेवा

मगफूर अहमद ऐजाजी का जन्म 3 मार्च 1900 को वर्तमान बिहार के तिरहुत प्रमंडल के मुजफ्फरपुर जिले के छोटे से गाँव दिहुली में हुआ था। फजले रहमान गंज मुरादाबादी के खलीफा मौलवी ऐजाज हुसैन बदायुनी के शागिर्द होने के कारण उन्होंने 'ऐजाजी' नामक पदवी ग्रहण की। उनके पिता मौलवी हाफिजुद्दीन हुसैन उस क्षेत्र के एक अमीर जमींदार थे और उन्होंने बचपन से ही उनमें उनमें देशभक्ति की भावना भर दी जिसके कारण उन्होंने किसानों को संगठित किया और नील की खेती कराने वाले यूरोपीय लोगों के खिलाफ विद्रोह किया। जब वे युवा ही थे तभी उनकी माँ का देहांत हो गया

करने के सर्वोच्च भाव को ग्रहण करने की प्रेरणा दी। और उसके बाद, वह लोगों के सामने आने वाले मुद्दों और चिंताओं का गहराई से अध्ययन करने के लिए पूरे उत्तर बिहार क्षेत्र के सक्रिय दौरे पर निकल पड़े। इसके अलावा, उन्होंने रचनात्मक गतिविधियों को चलाने के लिए चरखा समितियों, सेवा दल और रामायण मंडलियों को खड़ा किया, जिससे उन्हें तिलक मैदान, मुजफ्फरपुर में जिला कांग्रेस कमेटी के कार्यालय के लिए जमीन खरीदने के लिए धन जुटाने में भी मदद मिली।

जनता को संगठित करने में उनके द्वारा किए गए कुछ कार्यों में खादी कपड़े बेचना, विदेशी कपड़े जलाना, अन्य विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना और मुट्ठी भर अनाज का दान (मुठिया), महिलाओं के आभूषण और नकद मांगना शामिल था। एक ऐसी ही घटना में उन्होंने अपने पर पैतृक गाँव, दिहुली, में पश्चिमी परिधानों का अलाव जलाया। एक और प्रसिद्ध घटना में, जब वे मुठिया की मुहिम में लगे हुए थे तब उनकी चचेरी बहन के घर से एक मुट्ठी अनाज नहीं मिला और इस बात पर उनका अपनी चचेरी बहन के साथ बहस हुई। इस प्रकार स्वतंत्रता आंदोलन का समर्थन करने के लिए प्रत्येक भोजन से पहले अनाज की एक मुट्ठी या मुठिया निकालने की प्रथा बन गई। बाद में उसकी चचेरी बहन ने उन्हें पहचान कर उनके पास आई और उन्हें भोजन के लिए आमंत्रित किया, लेकिन उन्होंने पानी तक पीने का अनुरोध अस्वीकार कर दिया। उन्होंने भोजन केवल तभी ग्रहण करना स्वीकार किया जब उनकी बहन अनाज देने की प्रतिज्ञा करे और एक मुठिया लेकर आये।[17]

कांग्रेस नेताओं के मध्य, वह एक परिवर्तन-समर्थक के रूप में पद के खड़े हुए। उनकी और सी. आर. दास की मुलाकात 1922 के गया कांग्रेस में हुई, और उन्होंने स्थानीय चुनावों में कांग्रेस उम्मीदवारों के लिए जोरदार प्रचार अभियान चलाया। इसके साथ ही, उन्होंने मोहम्मद अली जौहर के अनुरोध पर कलकत्ता में खिलाफत समिति का नेतृत्व संभाला। सुभाष चंद्र बोस के नेतृत्व वाले एक विरोध मार्च के दौरान उन्हें हिरासत में लिया गया लेकिन अंततः रिहा कर दिया गया। 1928 में पटना में उन्होंने साइमन कमीशन के खिलाफ विरोध प्रदर्शन का भी आयोजन किया। शौकत अली, बेगम मोहम्मद अली, अब्दुल माजिद दरियाबादी, आजाद सुभानी, अबुल मुहासिन मुहम्मद सज्जाद और अन्य के साथ उन्होंने नेहरू रिपोर्ट पर आल पार्टी कांफ्रेंस और आल मुस्लिम पार्टीज कांफ्रेंस में सेंट्रल खिलाफत समिति का प्रतिनिधित्व किया। उन्होंने नेहरू रिपोर्ट (1928) के साथ अपनी असहमति व्यक्त की, और वह और दाऊदी अहरार पार्टी (1929) में शामिल हो गए, जो मुस्लिम लीग के सांप्रदायिक अलगाव के सिद्धांतों के खिलाफ थी। अहरार पार्टी के ऐजाजी सचिव और दाउदी अध्यक्ष थे। फिर भी, उन्होंने एआईसीसी के प्रस्तावों में अपनाए गए रचनात्मक कार्यक्रमों को कभी नहीं छोड़ा। 1930 में उन्होंने नमक सत्याग्रह के लिए लोगों को संगठित किया, शराब के खिलाफ अभियान चलाया और सामाजिक सुधार को स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ा; 1920 के दशक में बढ़ते सांप्रदायिक तनाव से चिढ़कर उनका झुकाव 1931 में खाकसार आन्दोलन[18] की तरफ भी होने लगा। बाद में 1934 में, नेपाल-भारत भूकंप के दौरान, जो भारतीय इतिहास में सबसे भीषण भूकंपों में से एक था, उन्होंने और राजेंद्र प्रसाद, दोनों ने राहत कार्यों में बड़ा योगदान दिया। उन्होंने कई राहत कार्यों का निरीक्षण किया जहां उन्होंने पीड़ितों के लिए भोजन और आवास उपलब्ध कराया।[19] वह विभिन्न मंचों पर बिहार के लोगों की गरिमा और गौरव के लिए भी खड़े रहे। 1923 में दिल्ली में। ICC की बैठक में, जिसकी अध्यक्षता मौलाना अबुल कलाम ने की थी, बिहारी प्रतिनिधियों के लिए बैठने की भेदभावपूर्ण व्यवस्था का उन्होंने विरोध किया। बाद में उनकी मांगों को स्वीकार कर लिया गया।

1941 में व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा में शामिल होने के बाद उन्होंने लोगों को संगठित करना शुरू किया। मुजफ्फरपुर में ऐसी ही एक लामबंदी में, स्थानीय पुलिस के लाठीचार्ज के कारण ऐजाजी और उनके समर्थकों को काफी चोटें आईं। यहां तक कि 25 जुलाई 1942 को अपने बड़े बेटे की मौत के दौरान भी उन्होंने भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लिया और 8 अगस्त 1942 को बॉम्बे में आयोजित एआईसीसी सत्र में भी भाग लिया जहां उन्होंने ब्रिटिश सरकार से पूर्ण स्वतंत्रता की मांग करने वाले प्रस्ताव के पारित होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[20] इस दौरान, आंदोलन में उनकी सक्रिय भागीदारी के कारण गिरफ्तारी वारंट भी जारी किया गया था। उसके घर की तलाशी ली गई जिसके कारण वे गुप्त रूप से काम करने लगे। अंततः इस स्वतः स्फूर्त आत्मनिर्भर आंदोलन का अंत करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने उन्हें अन्य राष्ट्रीय नेताओं के साथ नजरबंद कर दिया, क्योंकि वह अपने भाई के साथ जिला मजिस्ट्रेट की जिले की संदिग्ध सूची में थे। अपनी भागीदारी की पूरी अवधि के दौरान उन्होंने कुल मिलकर 13 वर्ष जेल में बिताये।[21]

मुस्लिम लीग के विरुद्ध

ऐजाजी ने मुहम्मद अली जिन्ना और उनके अलग पाकिस्तान बनाने के विचार का विरोध किया। उन्होंने जिन्ना की अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का मुकाबला करने के लिए 1940 में अखिल भारतीय जमहूर मुस्लिम लीग की स्थापना की और इसके प्रथम महासचिव के रूप में कार्य किया। उन्होंने मुजफ्फरपुर शहर में कुछ व्यक्तियों की एक टीम बनाई और घर-घर जाकर मुसलमानों को इस बात के लिए राजी करने का अभियान चलाया कि वे लीग की राजनीति का शिकार न बनें। 1947 में भी, जब लंबे समय तक और बार-बार होने वाले दंगों के कारण बिहार में मुसलमानों ने पलायन पर विचार करना शुरू कर दिया, तब उन्होंने और उनके सहयोगियों ने साइकिल चलाकर गांव-गांव जाकर लोगों को यह समझाने की कोशिश की कि पाकिस्तान में उनके जीवन, संपत्ति और सम्मान की रक्षा के लिए कोई अलग भगवान नहीं होगा।[22] ऐसे धार्मिक रूपकों के साथ, वह उन सबको चुनौती देते रहे जो लीग की एक अलग राष्ट्र की अवधारणा से सहमत थे। वह मस्जिदों के आसपास लोगों को एकत्रित करते थे और उन्हें जिन्ना की लीग के प्रस्ताव का बिहार के मुसलमानों पर पड़ने वाले प्रभाव के प्रति शिक्षित और जागरूक करने के लिए भाषण देते थे।[23]

परन्तु लीग के समर्थक, जो समूहों में

उनके आवास पर आते थे, अब वस्तुत: थूकते थे और नारे लगाते थे, तथा उनसे घोर शत्रुता के भाव के साथ मिलते थे। 'पाकिस्तान' के खिलाफ उनके लोकप्रिय आंदोलन पर कटाक्ष किया जाने लगा और मुस्लिम लीग के किशोर कैडर उनके घर पर समूहों में आते और चिल्लाते हुए नारा लगाते, "एजाजी! गद्दार -ए- कौम", और उसके घर के दरवाजे पर थूका करते।[24]

ऐजाजी जैसे कई राष्ट्रवादी मुसलमानों के व्यक्तित्व का अध्ययन करके हम कह सकते हैं कि उनके योगदान का न्यायोचित मूल्यांकन होना अभी बाकी है। अधिकांश मुस्लिम क्षेत्रों में धर्म के आधार पर पूर्ण राज्य के विचार और समर्थन को अस्वीकार किये जाने का यही लोग कारण थे। 1940 में राजनीतिक मतभेदों के कारण ऐजाजी ने कांग्रेस छोड़ दी, फिर भी अपनी ऑल इंडिया जम्हूर मुस्लिम लीग के साथ उन्होंने लीग के 'पाकिस्तान' का विरोध जारी रखा। अपनी तमाम शिकायतों के बावजूद, वह कभी भी लीग में नहीं गए। वह समग्र (मिले-जुले) राष्ट्रवाद - मुत्तहिदा कौमियात के प्रति दृढ़ता से प्रतिबद्ध रहे और अंत तक द्वि-राष्ट्र के सिद्धांत का विरोध करते रहे। वे न केवल बहुलवादी भारतीय विविधता में एकता के विचार में सक्रिय रूप से भाग लेते रहे और प्रचार करते रहे बल्कि आजादी के बाद भी उस भाव को जिया। वे 1966 तक जीवित रहे, और बेहतर नगरीय सुविधाओं, सांस्कृतिक मूल्यों, भाषाओं, शिक्षा, और जनता के बीच खेल को बढ़ावा देने जैसे गांधीवादी दर्शन पर आधारित रचनात्मक कार्यक्रमों को अपनाने और प्रचारित करने के लिए अथक प्रयास किया। समाज के कम भाग्यशाली समूहों को शैक्षिक संसाधन उपलब्ध कराने में उनका योगदान अतुलनीय है। उनके अभियान सटीक रूप से सफल रहे क्योंकि उन्होंने जनता के साथ मजबूत, प्राकृतिक संबंधों के साथ इन लोकतांत्रिक आंदोलनों को स्थापित किया। उनके प्रयासों से सरकार द्वारा कई उर्दू स्कूल खोले गए। उनके विरोध के कारण 1952 में मुजफ्फरपुर में बिहार विश्वविद्यालय के प्रशासनिक केंद्र की स्थापना हुई।

संदर्भ

1. फ्रांसिस रॉबिन्सन, इस्लाम एंड मुस्लिम हिस्ट्री इन साउथ एशिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ 213. फ्रांसिस रॉबिन्सन ने तर्क दिया है कि मुस्लिम अलगाववाद के विचारक और नेता, अलीगढ़ कॉलेज और अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के लोग कस्बों में गहराई से स्थित थे जिन्हें ब्रिटिश शासन के दौरान आर्थिक पतन का सामना करना पड़ा था।
2. शांतिमोय रे, फ्रीडम मूवमेंट एंड इंडियन मुस्लिम्स, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 28-29.
3. पूर्वोक्त, पृष्ठ 29-30.
4. शम्सुल इस्लाम, मुस्लिम अगेंस्ट पार्टीशन, फारोस मीडिया पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ 18.
5. पूर्वोक्त, पृष्ठ 122
6. पूर्वोक्त, पृष्ठ. 162
7. पूर्वोक्त, पृष्ठ 185
8. मौलाना अबुल कलाम, इंडिया विन्स फ्रीडम, ओरिएंट ब्लैकस्वान, दिल्ली, 2012, पृष्ठ 967.
9. सज्जाद, एम., (6 जनवरी, 2013,) twocircles.net., प्राप्त किया गया: http://twocircles.net/2013jan06/maghfur_aijazi_freedomfighter_and_builder_Indian_dem ocracy.html
10. एडमिन (2022,अप्रैल11). https://thegyannga.com, प्राप्त किया गया: https://thegyannga.com/biography-of-Magfor.html
11. वही.
12. मिनिस्टी ऑफ कल्चर, जी. ओ. (बिना तिथि) मगफूर अहमद ऐजाजी, प्राप्त किया गया: amritmahotsava.nic.in.: https://amritmahtv.nic.in
13. सज्जाद, मोहम्मद (6 जनवरी 2013), पूर्व उद्धृत.
14. हु इस दिस फ्रीडम फाइटर फ्रॉम बिहार? (2020, अगस्त 30). प्राप्त किया गया: www.mpositive.in: https://www.mpositive.in/tag/dr- मगफूर-अहमद -अजाजी-बिहार /
15. अहमद, सैयद नसीर (2014), द इम्मोर्तल, आजाद हाउस ऑफ पब्लिकेशन, गुंटूर (एपी), पृष्ठ 203-4.
16. सज्जाद, मोहम्मद (6 जनवरी 2013), पूर्व उद्धृत.
17. अभिलेखागार, बी. (2014). बिहार विभूति-खंड. iii. बिहार विभूति-खंड. iii में (पृष्ट 233-35). पटना बिहार अभिलेखागार: बिहार सरकार.
18. खाकसार आंदोलन की स्थापना 1931 में कैम्ब्रिज-शिक्षित गणितज्ञ और इस्लामी विद्वान इनायतुल्ला खाँ मशरिकी द्वारा लाहौर में की गई थी। यह आंदोलन स्पष्ट रूप से इस्लामी था, लेकिन सभी धर्मों को समान अधिकार देने की इच्छा का दावा करता था। यह अत्यधिक संगठित था और इसने तेजी से मुस्लिम जगत में लाखों सदस्यों को शामिल कर लिया। यह खाकी वर्दी, संगठित मार्च और नकली युद्ध के साथ सैन्यवादी भी था। आंदोलन का प्रतीक कुदाल तथा श्रम की गरिमा का समतावादी प्रतीक था जिसे इसके सदस्य वस्तुत: अपने साथ ले कर चलते थे। ब्रिटिश सरकार खाकसार आंदोलन को उसके उपनिवेशवाद-विरोधी रुख और फासीवाद-समर्थक प्रवृत्ति के कारण चिंता का कारण मानती थी।
19. सिंह, एम.के. (2017, 7 जनवरी), चिल्ड्रेन ऑफ मिडनाइट: मगफूर अहमद ऐजाजी. वह बिहार के एक राजनीतिक कार्यकर्ता थे! प्राप्त किया गया: http://www.youngbites.co एम: http://www.youngbites.com/newsdet.aspx?q=204964
20. सज्जाद, मोहम्मद (6 जनवरी 2013). पूर्व उद्धृत.
21. अहमद, एस. एन., (2017, 30 नवंबर)। मौलाना मंजूर अहसान ऐजाजी: - भारत के महान स्वतंत्रता सेनानी जिन्होंने ब्रिटिश जेलों में 13 साल बिताए। https://www.heritagetimes.in से लिया गया: https://www.heritagetimes.in/maulana-manzoor.html
22. मोहम्मद सज्जाद, मुस्लिम पॉलिटिक्स इन बिहार, रट्लेज, नई दिल्ली, पृष्ठ 213.
23. पूर्वोक्त, पृ.213. यह हिस्सा मोहम्मद सज्जाद द्वारा मघफूर के बेटे के साक्षात्कार से लिया गया है।
24. सज्जाद, मोहम्मद (6 जनवरी 2013). पूर्व उद्धृत.

स्वतंत्रता संघर्ष के दौर के भारतीय क्रांतिकारी केवल अच्छे संगठनकर्ता और उत्साही वीर नौजवान ही नहीं थे, वे उत्कृष्ट अध्येता और मौलिक चिंतक भी थे। देश की स्वतंत्रता से संबंधित संघर्ष, राजनैतिक घटनाक्रमों और अपने साथी क्रांतिकारियों से जुड़े विषयों पर वे अपनी प्रतिक्रिया दिए बिना नहीं रहते थे। ये प्रतिक्रियाएँ भी कोई नौसिखियों या अति उत्साही नौजवानों वाली नहीं रहती थीं। इन प्रतिक्रियाओं में अपने समय की राजनीति और कूटनीति का पूरा निचोड़ होता था। देश की जनता और वैश्विक समुदाय को अपने ध्येय और लक्ष्य से जोड़ने का प्रयास रहता था। इसके अलावा भी वे कई विषयों पर लिखते रहते थे। उस समय की राष्ट्रीय एवं वैश्विक परिस्थितियों पर सही दृष्टिकोण बनाने में ये लेख सहयोगी सिद्ध हो सकते हैं। इसी उद्देश्य से पाठकों की सुविधा के लिए ऐतिहासिक महत्त्व के कुछ दस्तावेजी लेख

काकोरी के शहीदों के लिए प्रेम के आँसू

इस लेख को जनवरी 1928 के 'किरती' ने काकोरी के शहीदों संबंधी एक संपादकीय नोट के रूप में प्रकाशित किया था। यह संपादकीय नोट जगमोहन सिंह एवं चमनलाल द्वारा संपादित तथा राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित 'भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज' शीर्षक पुस्तक में संकलित है। संपादकद्वय ने इसे भगत सिंह का लिखा हुआ नहीं माना है, लेकिन संभावित तौर पर भगवती चरण वोहरा का बताया है

काकोरी केस के चार वीरों को फाँसी पर लटका दिया गया। वे लाड़-प्यार से पले शूरवीर हँसते-हँसते शहादत प्राप्त कर गए। भारत माता के चार सुपुत्र अपने शीश देश और राष्ट्र के नाम अर्पण कर गए। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा, अपना फर्ज पूरा कर दिया। वे इस पंच भौतिक शरीर की कैद से आजाद हो गए और हम गुलामों को अपनी गुलामी के दुखड़े रोने के लिए पीछे छोड़ गए!!!

जिस देश में देशभक्ति गुनाह समझा जाता हो, जिस देश में आजादी की ख्वाहिश रखनी बगावत समझी जाती हो, जहाँ लोककल्याण की सजा मौत हो, जहाँ देशभक्तों की गर्दन में फाँसी का रस्सा डाला जाता हो, उस देश की हालत ख्याल में तो भले ही आ जाए, लेकिन बयान नहीं की जा सकती। किसी देश की अधोगति इससे ज्यादा क्या हो सकती है। लेकिन जिस देश में यह अन्याय नित्य प्रति होते हों, जहाँ ऐसे अत्याचार दिन-प्रतिदिन ही होते रहें यदि वहाँ के निवासी ऐसे-ऐसे अन्यायों, ऐसे अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठानी तो दूर, आह तक न भर सकते हों तो उस देश के निवासियों की हालत कैसी होगी?

हिंदुस्तान गुलाम है। इसकी बागडोर विदेशियों के हाथ है। इससे प्रेम करना मौत को पुकारना है। इसकी आजादी के सपने देखना घर-बार, बाल-बच्चे छोड़कर जलावतनी की जिंदगी गुजारना है। इस महीवाल के प्रेम ने कई सोहनियों को गहरे समुद्रों में डुबोया । इसके प्रेम ने कई प्रेमियों के दल-के-दल खतम किए। इसका प्रेम अगाध है, अथाह है। इसके प्रेमी बेअंत हैं, असंख्य हैं। न इस प्रेम का स्वर पता चलता है, न इसके प्रेमियों को ताव आती है। यहाँ तो 'चुप भाई चुप' वाली बात है।

यह जुल्म कब तक रहेगा? इस अन्याय का भाँडा कब फूटेगा? बेगुनाहों को कब तक शहीद किया जाएगा? देशप्रेमियों को कब तक गोली का निशाना बनाया जाएगा? कब तक इस गुलामी डायन का और मुँह देखना पड़ेगा? आजादी देवी के दर्शन कब तक होंगे? अभी कितनी शहीदियाँ प्राप्त करनी होंगी? अभी और कितनों को फाँसी पर चढ़ाया जाएगा?

रब्बा! वह दिन कब आएगा, जब यह शहीदियाँ रंग

लाएंगी। ईश्वर, वह दिन कब देखेंगे जब हमारा बगीचा हरा-भरा होगा? यहाँ से पतझड़ का कूच कब होगा? उल्लू कब तक इस बाग में डेरा जमाए बैठे रहेंगे? बुलबुलें किस दिन फिर यहाँ चहचहाएंगी? यह पिजरे कब टूटेंगे? आजादी कब लौटेगी, उजड़े कब फिर बसेंगे?

लोगों! भारत माता के चार सुन्दर जवान फाँसी चढ़ा दिए गए। वे नौकरशाही के डसे, दुश्मनी का शिकार हो गए। कौन बता सकता है कि यदि वे जीवित रहते तो क्या-क्या नेकी के काम करते, कौन-कौन से परोपकार करते? कौन कह सकता है कि उनके रहने से संसार पहले से सुंदर और रहने योग्य न दिखाई देता? वे वीर थे, आजादी के आशिक थे। उन्होंने देश और कौम की खातिर अपनी जान लुटा दी। वे अपनी माँओं की कोख को सफल बना गए।

यदि भारत माता आजाद होती तो इनके बलिदानों का मोल पड़ता। यदि आज हिंदुस्तान में कुछ जान होती तो ये बलिदान बेकार न होते। हाय! आजादी के वीर चले गए। उन्हें किसी ने न पहचाना, उन्हें किसी ने न कहा, आप शूरवीर हो, आप बहादुर हो। वह जगह धन्य है, जहाँ आप जन्मे-पले! जहाँ आप खेले। वे राहें धन्य हैं, जहाँ आप चले, जहाँ आप कूदे-भागे। वीर, मातृभूमि के लाडले वीर चले गए। वे अपना जन्म सफल कर गए!

बातें करनी आसान हैं, बड़कें मारनी आसान हैं। चगल-चगल करना और बात है, कुर्बानी देना और बात है। परीक्षा अलूणी चट्टान है, इसे चाटना आसान नहीं है। परीक्षा से बड़े-बड़े तौबा कर उठे थे। परीक्षा के आगे कोई जिगरवाला ही टिक सकता है। इन वीरों ने किस हिम्मत, किस बहादुरी से परीक्षा दी है। इनकी बहादुरी कभी भूल सकती है? धन्य हैं इनके माँ-बाप, जिन्होंने उन्हें जन्म दिया। धन्य हैं ये स्वयं, जो बलिदान के पुंज, आत्मत्याग की मिसाल हैं।

जब कभी आजादी का इतिहास लिखा जाएगा, जब कभी शहीदों का जिक्र होगा, जब कभी भारत माता के लिए बलिदान करने वालों की चर्चा होगी तो वही 1. राजिन्द्रनाथ लाहिड़ी, 2. रामप्रसाद बिस्मिल, 3. रोशनसिंह, और 4. अशफाक उल्ला का नाम जरूर लिया जाएगा। उस समय आने वाली पीढ़ियाँ इन शहीदों के आगे शीश झुकाएंगी और इन वीरों के बहादुरी भरे किस्से सुन-सुन सिर हिलाएंगी। उस समय ये कौम का आदर्श माने जाएंगे, इन बुजुर्गों की पूजा होगी।

आज हम कमजोर हैं, निःशक्त हैं। आज हम गिरे हुए हैं, झूठे हैं। आज हम अपनी दिली भावनाएँ नहीं बता सकते क्योंकि हम कायर हैं, डरपोक हैं, आज हमें सच कहने से डर लगता है, क्योंकि कानून की तलवार हमारे सिरों पर लटकती दिखाई देती है। इससे यह नहीं कह सकते, 'काकोरी के शहीदों! आपने जो किया, भारत माता के बंधन तोड़ने के लिए किया। आपने जो कष्ट उठाए, वह हिंदुस्तान को आजाद करवाने के लिए उठाए।' आज हम यह नहीं कह सकते कि 'आपने अपने मतानुसार अच्छा किया।'

गुलामों की अवस्था कितनी गिर जाती है। गुलामों में कितनी गिरावट आ जाती है। गुण उनमें से किस तरह भाग जाते हैं। वे कितने ढोंगी और पाखंडी बन जाते हैं। वे कितने बुजदिल व कायर बन जाते हैं। वे सच्ची-खरी बातें मुँह पर नहीं कह सकते। वे दिल में कुछ और रखते हैं और बाहर कुछ और। उनकी हालत कितनी दयनीय हो जाती है!

इस हालत को सुधारने का एक ही साधन है, इस दुर्दशा को बदलने का एकमात्र इलाज है, इस दुर्दशा की एक ही दवा है, और वह है आजादी। आजादी कुर्बानियों के बगैर नहीं मिल सकती। शहीदों की इज्जत करने से, शहीदों के कारनामे याद करने से कुर्बानी का चाव उमड़ता है। जो

कौम शहीदों को शहीद नहीं कह सकती, उसे क्या खाक आजाद होना है?

लोगों ! देखे हैं आशिक सूली पर चढ़ते? वे मौत से मजाक करते थे। वे मौत पर हँसते थे, उन्हें मृत्यु का भय नहीं था। वे यार की गली में शीश तली पर रखकर आए थे। उन्हें डर क्या था, वे तो आए ही मरने थे। मृत्यु का तो वे पहले ही वरण कर चुके थे, जीवन की आशा तो वे पहले ही छोड़ चुके थे। वे तो गाते थे-

एक मिट जाने की हसरत अब दिले-बिस्मिल में है।

कहाँ वे और कहाँ हम? वे तो किसी और ही देश के निवासी थे। वे तो गरीबों की आह सुनकर मैदान में उतरे थे। वे तो हिंदुस्तान से भूख-नंग को दूर करने आए थे। वे तो मजदूरों और किसानों का हाल पूछने आए थे। वे तो किसी ऊँचे आदर्श के पुजारी थे। वे तो किसी ऊँचे स्वप्न की उड़ान में मस्त थे। वे तो वे नजारे देखते थे, जहाँ न भूख है, न नग्नता। जहाँ न गरीबी है, न अमीरी। जहाँ न जुल्म है, न अन्याय। बस जहाँ प्रेम है, एकता है, जहाँ इंसाफ है, आजादी हैं, जहाँ सुंदरता है। पर हम? हम? हाय रे!

किसी का आदर्श कमाना, आप खाना और बच्चों को पालना होता है। किसी का आदर्श स्वयं को ऊँचा उठाने का होता है। किसी का आदर्श गरीबों, दुखियों को लूटकर धन-दौलत इकट्ठी करना होता है, किसी का आदर्श अपने सुंदर शरीर को तकलीफ से दूर रखने का होता है।

किसी का आदर्श कुछ होता है, किसी का कुछ। लेकिन उनका आदर्श देश था। उनका आदर्श हिंदुस्तान की आजादी था। उनका कोई स्वार्थ नहीं था। उनके खाने के लिए, उन्हें ओढ़ने के लिए किसी बात की कमी न थी। वे तो जो कुछ करते थे, लोक-कल्याण की खातिर, लोक-सेवा के लिए करते थे। वे इतने बलिदान के पूंज निकले, कि स्वयं को हमारे ऊपर वार दिया। आइए, इन वीरों को प्रणाम करें।

मातृभूमि के लाडलो! क्या हुआ यदि डर के मारे आज हम आपका नाम भी लिखने से घबराते हैं? क्या हुआ जो आज हम दिल की बातें कहने में झिझकते हैं? क्या हुआ यदि आज हिंदुस्तान में मुर्दानोशी छाई है और आपका नाम लेने से ही षड्यंत्रकारी बन जाते हैं? क्या हुआ यदि कोई हिंदुस्तानी आपको भला-बुरा भी कहे, लेकिन समय आएगा जब आपकी कद्र होगी, जब आपको शहीद कहा जाएगा, जिस तरह 1857 के गदर को अब 'आजादी की जंग' कहा जाता है। समय सिद्ध कर देता है, समय सच्ची-सच्ची कहलवा देता है, समय किसी का लिहाज नहीं करता।

किसी का आदर्श कुछ होता है, किसी का कुछ। लेकिन उनका आदर्श देश था। उनका आदर्श हिंदुस्तान की आजादी था। उनका कोई स्वार्थ नहीं था। उनके खाने के लिए, उन्हें ओढ़ने के लिए किसी बात की कमी न थी। वे तो जो कुछ करते थे, लोक-कल्याण की खातिर, लोक-सेवा के लिए करते थे। वे इतने बलिदान के पूंज निकले, कि स्वयं को हमारे ऊपर वार दिया। आइए, इन वीरों को प्रणाम करें। मातृभूमि के लाडलो! क्या हुआ यदि डर के मारे आज हम आपका नाम भी लिखने से घबराते हैं? क्या हुआ जो आज हम दिल की बातें कहने में झिझकते हैं? क्या हुआ यदि आज हिंदुस्तान में मुर्दानोशी छाई है और आपका नाम लेने से ही षड्यंत्रकारी बन जाते हैं

उस समय आप अपनी असली शान से चमकेंगे और उस समय हिंदुस्तान आप पर बलिहारी जाएगा। शहीद वीरों! हम कृतघ्न हैं, हम तुम्हारे किए को नहीं जानते। हम कायर हैं, हम सच-सच नहीं कह सकते। हमें आप माफ करो, हमें आप क्षमादान दो। हमें मौत से भय लगता है, हमारा दिमाग सूली का नाम सुनते ही चक्कर खा जाता है। आप धन्य थे। आपके बड़े जिगर थे कि आपने फाँसी को टिच्च समझा। आपने मौत के समय मजाक किए! पर हम? हमें चमड़ी प्यारी है, हमें तो जरा-सी तकलीफ ही मौत बनकर दिखने लगती है। आजादी! आजादी का तो नाम सुनते ही हमें कँपकँपी छिड़ जाती है। हाँ! गुलामी के साथ हमें प्यार है, गुलामी की ठोकरों से हमें मजा आता है! आपकी नस-नस से, रग-रग से आजादी की पुकार गूंजती थी लेकिन हमारी रग-रग से, हमारी नस-नस से, गुलामी की आवाज निकलती है। आपका और हमारा क्या मेल? हमें आप क्षमा करो, आप हमारे केवल यह प्रेम के अश्रु ही स्वीकार करो। कहो, धन्य हैं, काकोरी के शहीद!

साभार : भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज, संपादक : जगमोहन सिंह एवम् चमनलाल, राजकमल प्रकाशन पृ; 90-100

काकोरी के शहीदों की फाँसी के हालात

काकोरी कांड के जिम्मेदार माने जाने वाले क्रांतिकारियों और उनके परिजनों पर तत्कालीन अंग्रेजी शासन जितने अत्याचार किए, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। लेकिन उन वीरों ने किसी भी स्थिति में न तो हार मानी और न ही कभी देश के लिए अपने बलिदान की बात को लेकर दुखी हुए। उनकी फाँसी के हालात को लेकर भगत सिंह ने स्वयं 'विद्रोही' नाम से 'किरती' के 1 जनवरी 1928 के अंक में एक लेख लिखा था। यह लेख भी जगमोहन सिंह एवं चमनलाल द्वारा संपादित तथा राजकमल प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित 'भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज' शीर्षक पुस्तक में संकलित है।

'किरती' के पाठकों को पहले किसी अंक में हम काकोरी के मुकदमे के हालात बता चुके हैं। अब इन चार वीरों को फाँसी दिए जाने का हाल बताते हैं।

17 दिसंबर, 1927 को श्री राजिन्द्रनाथ लाहिड़ी को गोंडा जेल में फाँसी दी गई और 19 दिसंबर, 1927 को श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल' को गोरखपुर जेल में, श्री अशफाक उल्ला को फैजाबाद जेल में और श्री रोशनसिंह जी को इलाहाबाद जेल में फाँसी चढ़ा दिया गया।

इस मुकदमे के सेशन जज मि. हेमिल्टन ने फैसला देते हुए कहा था कि ये नौजवान देशभक्त हैं और इन्होंने अपने किसी लाभ के लिए कुछ भी नहीं किया और यदि ये नौजवान अपने किए पर पश्चाताप करें तो उनकी सजाओं में रियायत की जा सकती है। उन चारों वीरों द्वारा इस आशय की घोषणा भी हुई, लेकिन उन्हें फाँसी दिए बगैर डायन नौकरशाही को चौन कैसे पड़ता। अपील में बहुत-से लोगों की सजाएँ बढ़ा दी गई। फिर न तो गवर्नर और न ही वायसराय ने उनकी जवानी की ओर ध्यान दिया और प्रिवी कौंसिल ने उनकी अपील सुनने से पहले ही खारिज कर दी। यू. पी. कौंसिल के बहुत-से सदस्यों, असेंबली और कौंसिल और स्टेट के बहुत-से सदस्यों ने वायसराय को उनकी जवानी पर दया करने की दरखास्त दी, लेकिन होना क्या था? उनके इतने हाथ-पाँव मारने का कोई परिणाम न निकला। यू. पी. कौंसिल के स्वराज पार्टी के नेता श्री गोविन्द वल्लभ पंत उनके मामले पर बहस के लिए अपना मत वायसराय और लाट साहिब को भेजने के लिए शोर मचा रहे थे। पहले तो प्रेसिडेंट साहिब ही अनुमति नहीं दे रहे थे, लेकिन बहुत-से सदस्यों ने मिलकर कहा तो सोमवार को बहस के लिए इजाजत मिली, लेकिन फिर छोटे अंग्रेज अध्यक्ष ने, जो उस समय अध्यक्ष का काम कर रहा था, सोमवार को कौंसिल की छुट्टी ही कर दी। होम मेंबर नवाब छत्तारी के दर पर जा चिल्लाए, लेकिन उनके कानों पर जूँ तक न सरकी और कौंसिल में उनके संबंध में एक शब्द भी न कहा जा सका और उन्हें फाँसी पर लटका ही दिया गया। इसी क्रोध में नीचता के साथ रूसी जार और फ्रांसीसी लुइस बादशाह होनहार युवकों को फाँसी पर लटका-लटकाकर दिलों की भड़ास निकालते रहे लेकिन उनके राज्यों की नींव खोखली हो गई थीं और उनके तख्ते पलट गए। इसी गलत तरीके का आज फिर इस्तेमाल हो रहा है। देखें शायद इस बार इनकी मुरादें पूरी हों। नीचे हम उन चारों वीरों के हालात संक्षेप में लिखते हैं, जिससे यह पता चले कि यह अमूल्य रत्न मौत के पास खड़े होते भी किस बहादुरी से हँस रहे थे।

श्री राजिन्द्रनाथ लाहिड़ी

आप हिंदू विश्वविद्यालय बनारस के एम. ए. के छात्र थे। 1925 में कलकत्ते के एक दक्षिणेश्वर बम फैक्ट्री पकड़ी गई थी, उसमें आप भी पकड़े गए थे और आपको सात बरस की कैद हो गई थी। वहीं से आपको लखनऊ लाया गया और काकोरी जेल में आपको फाँसी की सजा दे दी गई। आपको बाराबंकी और गोंडा जेलों में रखा। आप मौत को सामने देख घबराते नहीं थे, बल्कि हमेशा हँसते रहते थे। आपका स्वभाव बड़ा हँसमुख और निर्भय था।

आप मौत का मजाक उड़ाते रहते थे। आपके दो पत्र हमारे सामने हैं। एक छह अक्तूबर को तब लिखा था जब वायसराय ने रहम की दरखास्त नामंजूर कर दी थी। आप लिखते हैं-

छह महीने बाराबंकी और गोंडा की काल कोठरियों में रहने के बाद आज यह बताया गया है कि एक हफ्ते के भीतर फाँसी दे दी जाएगी, क्योंकि वायसराय ने दस्तखत नामंजूर कर दी है। अब मैं अपना फर्ज समझता हूँ कि अपने इन मित्रों का [यहाँ उनके नाम हैं] धन्यवाद कर जाऊँ जिन्होंने मेरे लिए बहुत सी कोशिशें की। आप मेरा अंतिम नमस्कार स्वीकार करें। हमारे लिए मरना-जीना पुराने कपड़े बदलने से अधिक कुछ भी नहीं [यहाँ जेलवालों ने कुछ काट-छाँट की है, जो बिल्कुल पढ़ा नहीं जाता] मौत आ रही है, हँसते-हँसते बड़े चाव और खुशी से उसे जोर से गले लगा लूँगा। जेल के कानून अनुसार और कुछ नहीं लिख सकता। आपको नमस्कार, देश के दर्दमन्दों के नमस्कार, बन्देमातरम् !

आपका
राजिन्द्रनाथ लाहिड़ी

फिर इस पत्र के बाद फाँसी नहीं हो सकी, क्योंकि प्रिवी कौंसिल में अपील की गई थी। दूसरा पत्र आपने 14 दिसंबर को एक मित्र के नाम लिखा था-

कल मुझे पता चला है कि प्रिवी कौंसिल ने मेरी अपील खारिज कर दी है। आप लोगों ने हमें बचाने की बहुत कोशिश की, लेकिन लगता है कि देश की बलिवेदी पर हमारे प्राणों के बलिदान की ही जरूरत है। मौत क्या है ? जीवन की दूसरी दिशा के सिवाय कुछ नहीं। जीवन क्या है? मौत की ही दूसरी दिशा का नाम है। फिर डरने की क्या जरूरत है? यह तो प्राकृतिक बात है, उतनी ही प्राकृतिक जितना कि प्रातः में सूर्योदय। यदि हमारी यह बात सच है कि इतिहास पलटा खाता है तो मैं समझता हूँ कि हमारा बलिदान व्यर्थ नहीं जाएगा।

मेरा नमस्कार, सबको अंतिम नमस्कार !

आपका
राजिन्द्रनाथ लाहिड़ी

कितना भोला, कितना सुंदर और निर्भीकतापूर्ण पत्र है और इनका लेखन कितना भोला है! फिर इन्हें ही अन्यों से दो दिन पहले ही फाँसी दे दी गई। फाँसी के समय आपको हथकड़ी पहनाने का इंतजाम किया जाने लगा तो आपने कहा कि क्या जरूरत है। आप मुझे रास्ता बताते जाओ, मैं स्वयं ही उधर चल पड़ता हूँ। अर्थी का जुलूस निकाला गया और बड़े जोश से अंतिम संस्कार किया गया। वहीं यादगार बनाने की सलाह की जा रही है।

श्री रोशनसिंह जी

आपको 19 दिसंबर को इलाहाबाद में फाँसी दी गई। उनका एक आखिरी पत्र 13 दिसंबर का लिखा हुआ है। आप लिखते हैं-

इस हफ्ते फाँसी हो जाएगी। ईश्वर के आगे विनती है कि आपके प्रेम का आपको फल दे। आप मेरे लिए कोई गम न करना। मेरी मौत तो खुशीवाली है। चाहिए तो यह कि कोई बदफैली करके बदनाम होकर न मरे और अंत समय ईश्वर याद रहे। सो यही दो बातें हैं। इसलिए कोई गम नहीं करना चाहिए। दो साल बाल बच्चों से अलग रहा हूँ। ईश्वर-भजन का खूब अवसर मिला। इसलिए मोह-माया सब टूट गई। अब कोई चाह बाकी न रही। मुझे विश्वास है कि जीवन की दुख भरी यात्रा खत्म करके सुख के स्थान पर जा रहा हूँ। शास्त्रों में लिखा है, युद्ध में मरनेवालों की ऋषियों जैसी रहत [श्रेणी] होती है। (आगे अस्पष्ट है)।

'जिंदगी जिंदादिली को जानिए रोशन!' वरना कितने मरे और पैदा होते जाते हैं।

आखिरी नमस्कार!

श्री रोशनसिंह रायबरेली के काम करनेवालों में थे। किसान आंदोलन में जेल जा चुके थे। सबको विश्वास था कि हाईकोर्ट से आपकी मौत की सजा टूट जाएगी

क्योंकि आपके खिलाफ कुछ भी नहीं था। लेकिन फिर भी वे अंग्रेजशाही का शिकार हो ही गए और फाँसी पर लटका दिए गए। तख्ते पर खड़े होने के बाद आपके मुँह से जो आवाज निकली, वह यह थी-

'बंदेमातरम्!'

आपकी अर्थी के जुलूस की इजाजत नहीं दी गई। लाश की फोटो लेकर दोपहर में आपका दाह संस्कार कर दिया गया।

श्री अशफाक उल्ला

यह मस्ताना शायर भी हैरान करनेवाली खुशी से फाँसी चढ़ा। बड़ा सुंदर और लम्बा-चौड़ा जवान था, तगड़ा बहुत था। जेल में कुछ कमजोर हो गया था। आपने मुलाकात के समय बताया कि कमजोर होने का कारण गम नहीं, बल्कि खुदा की याद में मस्त रहने की खातिर रोटी बहुत कम खाना है। फाँसी से एक दिन पहले आपकी मुलाकात हुई। आप खूब सजे-सँवरे थे। बड़े-बड़े कढ़े हुए केश खूब सजते थे। बड़ा हँस-हँसकर बातें करते रहे। आपने कहा, कल मेरी शादी होने वाली है। दूसरे दिन सुबह छह बजे आपको फाँसी दी गई। कुरान शरीफ का बस्ता लटकाकर हाजियों की तरह वजीफा पढ़ते हुए बड़े हौसले से चल पड़े। आगे जाकर तख्ते पर रस्सी को चूम लिया। वहीं आपने कहा-

"मैंने कभी किसी आदमी के खून से अपने हाथ नहीं रँगे और मेरा इंसाफ खुदा के सामने होगा। मेरे ऊपर लगाए सभी इल्जाम गलत हैं।" खुदा का नाम लेते ही रस्सी खींची गई और वे कूच कर गए। उनके रिश्तेदारों ने बड़ी मिन्नतों खुशामदों से उनकी लाश ली और उन्हें शाहजहाँपुर ले आए। लखनऊ स्टेशन पर मालगाड़ी के एक डिब्बे में उनकी लाश देखने का अवसर कुछ लोगों को मिला। फाँसी के दस घंटे बाद भी चेहरे पर वैसी ही रौनक थी। ऐसा लगता था कि अभी ही सोए हों। लेकिन अशफाक तो ऐसी नींद सो गए थे कि जहाँ से वे कभी नहीं जागेंगे। अशफाक शायर थे और उनका शायर उपनाम हसरत था। मरने से पहले आपने ये दो शेर कहे थे-

'फनाह हैं हम सबके लिए, हम पै कुछ नहीं मौकूफ!
वका है एक फकत जाने की ब्रिया के लिए।'

(नाश तो सभी होंगे, कोई हम अकेले थोड़े होंगे। न मरनेवाला तो सिर्फ एक परमात्मा है।) और-

'तंग आकर हम उनके जुल्म से बेदाद से,
चल दिए सूए अदम जिंदाने फैजाबाद से।'

श्री अशफाक की ओर से एक माफीनामा छपा था, उसके संबंध में रामप्रसादजी ने अपने आखिरी ऐलान में पोजीशन साफ कर दी है। आपने कहा है कि अशफाक माफीनामा तो क्या, अपील के लिए भी राजी नहीं थे। आपने कहा था, मैं खुदा के सिवाय किसी के आगे झुकना नहीं चाहता। परंतु रामप्रसाद के कहने-सुनने से आपने वही सब कुछ लिखा था। वरना मौत का उन्हें कोई डर या भय नहीं था। उपरोक्त हाल पढ़कर पाठक भी यह बात समझ सकते हैं। आप शाहजहाँपुर के रहने वाले थे और आप श्री रामप्रसाद के दाएँ हाथ थे। मुसलमान होने के बावजूद आपका कट्टर आर्यसमाजी धर्म से हद दर्जे का प्रेम था। दोनों प्रेमी एक बड़े काम के लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर अमर हो गए।

श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल'

श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल' बड़े होनहार नौजवान थे। गजब के शायर थे। देखने में भी बहुत सुंदर थे। योग्य बहुत थे। जानने वाले कहते हैं कि यदि किसी और जगह या किसी और देश या किसी और समय पैदा हुए होते तो सेनाध्यक्ष बनते। आपको पूरे षड्यंत्र का नेता माना गया है। चाहे बहुत ज्यादा पढ़े हुए नहीं थे, लेकिन फिर भी पंडित जगतनारायण जैसे सरकारी वकील की सुध-बुध भुला देते थे। चीफ कोर्ट में अपनी अपील खुद ही लिखी थी, जिससे कि जजों को कहना पड़ा कि इसे लिखने में जरूर ही किसी बहुत बुद्धिमान व योग्य व्यक्ति का हाथ है। 19 तारीख की शाम को आपको फाँसी दी गई। 12 की शाम को जब आपको दूध दिया गया तो आपने यह कहकर इनकार

कर दिया कि अब मैं माँ का दूध ही पिऊँगा। 18 को आपकी मुलाकात हुई। माँ को मिलते समय आपकी आँखों से अश्रु बह चले। माँ बहुत हिम्मतवाली देवी थी। आपसे कहने लगी- हरीशचन्द्र, दधीचि आदि बुजुर्गों की तरह वीरतापूर्वक धर्म व देश के लिए जान दे, चिंता करने और पछताने की जरूरत नहीं। आप हँस पड़े। कहा, 'माँ! मुझे क्या चिंता और क्या पछतावा, मैंने कोई पाप नहीं किया। मैं मौत से नहीं डरता। लेकिन माँ! आग के पास रखा घी पिघल ही जाता है। तेरा मेरा संबंध ही कुछ ऐसा है कि पास होते ही आँखों से अश्रु उमड़ पड़े। नहीं तो मैं बहुत खुश हूँ।' फाँसी पर ले जाते समय आपने बड़े जोर से कहा, 'बंदेमातरम्', 'भारत माता की जय' और शांति से चलते हुए कहा-

'मालिक तेरी रजा रहे और तू ही तू रहे
बाकी न मैं रहूँ, न मेरी आरजू रहे।
जब तक कि तन में जान रगों में लहू रहे,
तेरा ही जिक्रेयार, तेरी जुस्तजू रहे।'

फाँसी के तख्ते पर खड़े होकर आपने कहा-
I wish the downfall of the British Empire.
(मैं ब्रिटिश साम्राज्य का पतन चाहता हूँ)
फिर यह शेर पढ़ा-

'अब न अहले वलवले हैं
और न अरमानों की भीड़!
एक मिट जाने की हसरत,
अब दिले-बिस्मिल में है!'

फिर ईश्वर के आगे प्रार्थना की और फिर एक मंत्र पढ़ना शुरू किया। रस्सी खींची गई। रामप्रसादजी फाँसी पर लटक गए। आज वह वीर इस संसार में नहीं है। उसे अंग्रेजी सरकार ने अपना खौफनाक दुश्मन समझा। आम ख्याल यह है कि उसका कसूर यही था कि वह इस गुलाम देश में जन्म लेकर भी एक बड़ा भारी बोझ बन गया था और लड़ाई की विद्या से खूब परिचित था। आपको मैनपुरी षड्यंत्र के नेता श्री गेंदालाल दीक्षित जैसे शूरवीर ने विशेष तौर पर शिक्षा देकर तैयार किया था। मैनपुरी के मुकदमे के समय आप भागकर नेपाल चले गए थे। अब वही शिक्षा आपकी मृत्यु का एक बड़ा कारण हो गया। 7 बजे आपकी लाश मिली और बड़ा भारी जुलूस निकला। स्वदेश-प्रेम में आपकी माता ने कहा-

"मैं अपने पुत्र की इस मृत्यु पर प्रसन्न हूँ, दुखी नहीं। मैं श्री रामचंद्र जैसा ही पुत्र चाहती थी। बोलो श्री रामचन्द्र की जय!"

इत्र-फलेल और फूलों की वर्षा के बीच उनकी लाश का जुलूस जा रहा था। दुकानदारों ने उनके ऊपर से पैसे फेंके। 11 बजे आपकी लाश श्मशान भूमि में पहुँची और अंतिम

फिर ईश्वर के आगे प्रार्थना की और फिर एक मंत्र पढ़ना शुरू किया। रस्सी खींची गई। रामप्रसादजी फाँसी पर लटक गए। आज वह वीर इस संसार में नहीं है। उसे अंग्रेजी सरकार ने अपना खौफनाक दुश्मन समझा। आम ख्याल यह है कि उसका कसूर यही था कि वह इस गुलाम देश में जन्म लेकर भी एक बड़ा भारी बोझ बन गया था और लड़ाई की विद्या से खूब परिचित था। आपको मैनपुरी षड्यंत्र के नेता श्री गेंदालाल दीक्षित जैसे शूरवीर ने विशेष तौर पर शिक्षा देकर तैयार किया था। मैनपुरी के मुकदमे के समय आप भागकर नेपाल चले गए थे। अब वही शिक्षा आपकी मृत्यु का एक बड़ा कारण हो गया

क्रिया समाप्त हुई।
आपके पत्र का आखिरी हिस्सा आपकी सेवा में प्रस्तुत है-

"मैं खूब सुखी हूँ। 19 तारीख को प्रातः जो होना है उसके लिए तैयार हूँ। परमात्मा काफी शक्ति देंगे। मेरा विश्वास है कि मैं लोगों की सेवा के लिए फिर जल्द ही जन्म लूँगा। सभी से मेरा नमस्कार कहें। दया कर इतना काम और भी करना कि मेरी ओर से पंडित जगतनारायण (सरकारी वकील जिसने इन्हें फाँसी लगवाने के लिए बहुत जोर लगाया था) को अंतिम नमस्कार कह देना। उन्हें हमारे खून से लथपथ रुपयों से चौन की नींद आए। बुढ़ापे में ईश्वर उन्हें सद्बुद्धि दे।"

रामप्रसाद जी की सारी हसरतें दिल ही दिल में रह गई। आपने एक लंबा-चौड़ा ऐलान किया है, जिसे संक्षेप में हम दूसरी जगह दे रहे हैं। फाँसी से दो दिन पहले सी. आई. डी. के मि. हैमिल्टन आप लोगों की मिन्नतें करते रहे कि आप मौखिक रूप से सब बातें श्बता दो, आपको पाँच हजार रुपया नकद दे दिया जाएगा और सरकारी खर्चे पर विलायत भेजकर बैरिस्टर की पढ़ाई करवाई जाएगी। लेकिन आप कब इन बातों की परवाह करते थे। आप हकूमतों को ठुकरानेवाले व कभी-कभार जन्म लेनेवाले वीरों में से थे।

मुकदमे के दिनों आपसे जज ने पूछा था, "आपके पास क्या डिग्री है?" तो आपने हँसकर जवाब दिया था, "सम्राट बनानेवालों को डिग्री की कोई जरूरत नहीं होती, क्लाइव के पास भी कोई डिग्री नहीं थी।" आज वह वीर हमारे बीच नहीं है। आह!!

शहीद अशफाक उल्ला का फाँसीघर से संदेश

यह संदेश क्रांतिवीर अशफाक उल्ला खाँ ने 10 दिसंबर 1927 को फैजाबाद जेल से देशवासियों के लिए भेजा

भारतमाता के रंगमंच पर हम अपनी भूमिका अदा कर चुके हैं। गलत किया या सही, जो भी हमने किया, स्वतंत्रता प्राप्ति की भावना से प्रेरित होकर किया। हमारे अपने (अर्थात् कांग्रेसी नेता) हमारी निंदा करें या प्रशंसा, लेकिन हमारे दुश्मनों तक को हमारी हिम्मत और वीरता की प्रशंसा करनी पड़ी है। लोग कहते हैं, हमने देश में आतंकवाद (Terrorism) फैलाना चाहा है, यह गलत है। इतनी देर तक मुकदमा चलता रहा। हमारे में से बहुत-से लोग बहुत दिनों तक आजाद रहे और अब भी कई लोग आजाद हैं (संकेत चंद्रशेखर आजाद की ओर है)। फिर भी हमने या हमारे किसी साथी ने हमें नुकसान पहुँचाने वालों तक पर गोली नहीं चलाई। हमारा उद्देश्य यह नहीं था। हम तो आजादी हासिल करने के लिए देश भर में क्रांति लाना चाहते थे।

जजों ने हमें निर्दयी, बर्बर, मानव-कलंकी आदि विशेषणों से याद किया है। हमारे शासकों की कौम के जनरल डायर ने निहत्थों पर गोलियाँ चलाई थीं और चलाई थी बच्चों, बूढ़ों व स्त्री-पुरुषों पर। तब इंसाफ के इन ठेकेदारों ने अपने इन भाई-बंधुओं को किस विशेषण से संबोधित किया था? फिर हमारे साथ ही यह सलूक क्यों?

हिंदुस्तानी भाइयों! आप चाहे किसी भी धर्म या संप्रदाय को माननेवाले हों, देश के काम में साथ दो। व्यर्थ आपस में न लड़ो। रास्ते चाहे अलग हों, लेकिन उद्देश्य सबका एक है। सभी कार्य एक ही उद्देश्य की पूर्ति के साधन हैं, फिर यह व्यर्थ के लड़ाई-झगड़े क्यों? एक होकर देश की नौकरशाही का मुकाबला करो। अपने देश को आजाद कराओ। देश के सात करोड़ मुसलमानों में मैं पहला मुसलमान हूँ, जो देश की आजादी के लिए फांसी चढ़ रहा हूं, यह सोचकर मुझे गर्व महसूस होता है।

अंत में सभी को मेरा सलाम!
हिंदुस्तान आजाद हो!
मेरे भाई खुश रहें!

आपका भाई
अशफाक

'शहीदे-वतन' अशफाक उल्ला खाँ वारसी 'हसरत' की दुर्लभ डायरी से

ओ मातृभूमि भारत माता!

विद्यार्णव शर्मा द्वारा संकलित व संपादित तथा प्रवीण प्रकाशन, महरौली दिल्ली द्वारा प्रकाशित शोधग्रंथ 'युग के देवता' के पृष्ठ 71 एवं 72 पर अशफाक की ही हस्तलिपि में उनकी डायरी से कुछ पन्ने अंग्रेजी में दिए गए हैं। मूल अंग्रेजी में लिखी ये काव्यमयी पंक्तियाँ अत्यंत भावपूर्ण हैं। इन काव्यपंक्तियों का उतना ही भावप्रवण अनुवाद किया है स्वतंत्रता संग्राम के लब्धप्रतिष्ठ शोधार्थी एवं वरिष्ठ साहित्यकार मदनलाल वर्मा 'क्रांत' ने। यह अनुवाद उनकी कृति 'स्वाधीनता संग्राम के क्रांतिकारी साहित्य का इतिहास' में संकलित है।

ओ मेरे भारत ओ मेरी माता ओ मेरी प्यारी सी मातृभूमि!!
क्यों केश उलझे हुए हैं तेरे, क्यों म्लान है तेरे मुख की शोभा?
अंधेरे घर में अकेली बैठी, क्यों तेरे कपड़े फटे हुए हैं?
जब एकजुट होके, एक सुर में, करोड़ों जन मिलके गा रहे हैं -
ओ मेरे भारत! ओ मेरी माता! ओ मेरी प्यारी सी मातृभूमि!!

यहीं पे पैदा हुए थे गौतम, जिन्होंने निर्वाण-पथ दिखाया।
उन्होंने जो मुक्ति द्वार खोले, वो सबका दर्शन बने हुए हैं।
प्रणाम करता है विश्व जिनको, वो बुद्ध भी ये बता रहे हैं -
ओ मेरे भारत! ओ मेरी माता! ओ मेरी प्यारी सी मातृभूमि।।

यहीं पे धर्मानुसार शासन, अशोक सम्राट ने चलाया।
है आज कलयुग में कोई ऐसा, सभी के मस्तक झुके हुए हैं।
क्या तुम नहीं हो यहाँ के वासी? ये भाव क्यों मन में आ रहे हैं -
ओ मेरे भारत! ओ मेरी माता! ओ मेरी प्यारी सी मातृभूमि!!

क्यों तुमने ही अपने पूर्व-पुरखों, की कीर्ति को इस तरह भुलाया?
तुम्हारे दिन क्यों निशा सरीखे, अँधेरे से यूँ भरे हुए हैं?
प्रकाश में आओ, खुल के चमको, हम ऐसा सूरज दिखा रहे हैं:-
ओ मेरे भारत! ओ मेरी माता! ओ मेरी प्यारी सी मातृभूमि!!

हमें न तुम समझो भेड़, हम हैं मनुष्य, हमने विवेक पाया।
पुराने वैभव को फिर से पाने, का उर में प्रण हम किए हुए हैं।
न इसमें लज्जा, न कोई भय है, सगर्व हम सब ये गा रहे हैं -
ओ मेरे भारत! ओ मेरी माता! ओ मेरी प्यारी सी मातृभूमि!!

चंद अशआर, एक कतअ और चार मिसरे

अगर मौत आ भी जाए तो भला क्यों उससे घबराएँ
रहो हर हाल में खुश जैसे मैं अब मुस्कराता हूँ।

है ख्वाब ये जिंदगी, अंजाम इसका मौत है यारों!
मुझे देखो इसे हँसकर गले से मैं लगाता हूँ।

मुहब्बत मौत से हो जाए, तो फिर जिंदगी कैसी?
मुहब्बत की, तो मौत आएगी, फिर शर्मिंदगी कैसी?

जो आशिक हैं कभी मरने से घबराया नहीं करते।
अगर आ जाए तो फिर एक पल जाया नहीं करते।

मुहिब्बाने-वतन पाते हैं गुर्बत और तकलीफें
मगर चेहरे अगर देखो तो हरदम मुस्कराते हैं।
यही वो राज है जो उनको मुरझाने नहीं देता
तभी तो हँसते-हँसते मुश्किलें वो झेल जाते हैं।।

दिले अश्फाक में हुब्बे-वतन सबसे जियादा है।
तभी सबसे जियादा वो ये तकलीफें उठाता है।।

न कोई दिल में हसरत है, न कोई आरजू बाकी
अगर कुछ है तो देखें कौम से किस-किसको उल्फत है?

हमारे अपने हमपे रोएंगे, मैं उनपे रोता हूँ
जो अपनी कौम के दुश्मन हैं गद्दारे-वतन 'हसरत'।

मेरे बच्चो! बुजुर्गों! मेरे मर जाने पे मत रोना।
अमर हो जाऊँगा मरकर मेरे मरने पे खुश होना।।

निठल्ले व्यक्ति का जीवन, कोई जीवन नहीं होता।
वजह यह है कि कुछ करने को, उसका मन नहीं होता।
हवा में ज्यों धुआँ या बुलबुलों में झाग पानी का।
गुजर जाता है वो यूँ ही, कोई हलचल नहीं होता।।
निराशा को निकालो मन से असफलता पे मत रोओ।
बिना संघर्ष का जीवन, कोई जीवन नहीं होता।
बिना शिकवा शिकायत के, बढ़ो उत्साह से आगे।
समर्पण के बिना 'हसरत', कोई काम हल नहीं होता।।

साभार: स्वाधीनता संग्राम के क्रांतिकारी साहित्य का इतिहास, मदनलाल वर्मा 'क्रांत', प्रवीण प्रकाशन, 2006, पृ. 181-182

अशफाक

- राम प्रसाद बिस्मिल

अशफाक का यह संस्मरण रामप्रसाद बिस्मिल की रचनावली में संग्रहीत है। 'मंथन' में इसे इस उद्देश्य से लिया जा रहा है ताकि पाठकगण दोनों के संबंधों की गहराई को समझ सकें

मुझे भलीभाँति याद है, जबकि मैं बादशाही एलान के बाद शाहजहाँपुर आया था, तो तुमसे स्कूल में भेंट हुई थी। तुम्हारी मुझसे मिलने की बड़ी हार्दिक इच्छा थी। तुमने मुझसे मैनपुरी कांड के संबंध में कुछ बातचीत करनी चाहीं थी। मैंने वह समझकर कि एक स्कूल का मुसलमान विद्यार्थी मुझसे इस प्रकार को बातचीत क्यों करता है, तुम्हारी बातों का उत्तर उपेक्षा की दृष्टि से दे दिया था। तुम्हें उस समय बड़ा खेद हुआ था। तुम्हारे मुख से हार्दिक भावों का प्रकाश हो रहा था। तुमने अपने इरादे को यों ही नहीं छोड़ दिया, अपने निश्चय पर डटे रहे। जिस प्रकार हो सका कांग्रेस में बातचीत की। अपने इष्ट मित्रों द्वारा इस बात का विश्वास दिलाने की कोशिश की कि तुम बनाबटी आदमी नहीं, तुम्हारे दिल में मुल्क की खिदमत करने की ख्वाहिश थी। अंत में तुम्हारी विजय हुई। तुम्हारी कोशिशों ने मेरे दिल में जगह पैदा कर ली। तुम्हारे बड़े भाई मेरे उर्दू मिडिल के सहपाठी तथा मित्र थे, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। थोड़े दिनों में ही तुम मेरे छोटे भाई के समान हो गए थे, किंतु छोटे भाई बनकर तुम्हें संतोष न हुआ। तुम समानता के अधिकार चाहते थे, तुम मित्र की श्रेणी में अपनी गणना चाहते थे। वही हुआ। तुम सच्चे मित्र बन गए। सबको आश्चर्य था कि एक कट्टर आर्य- समाजी और मुसलमान का मेल कैसा? मैं मुसलमानों की शुद्धि करता था। आर्य-समाज मंदिर में मेरा निवास था, किंतु तुम इन बातों की किंचितमात्र चिंता न करते थे। मेरे कुछ साथी तुम्हारे मुसलमान होने के कारण कुछ घृणा की दृष्टि से देखते थे, किंतु तुम अपने निश्चय में दृढ़ थे। मेरे पास आर्य-समाज मंदिर में आते-जाते थे। हिंदू-मुसलिम झगड़ा होने पर, तुम्हारे मुहल्ले के सब कोई तुम्हें खुल्लमखुल्ला गालियाँ देते थे, काफिर के नाम से पुकारते थे, पर तुम कभी भी उनके विचारों से सहमत न हुए। सदैव हिंदू-मुसलिम ऐक्य के पक्षपाती

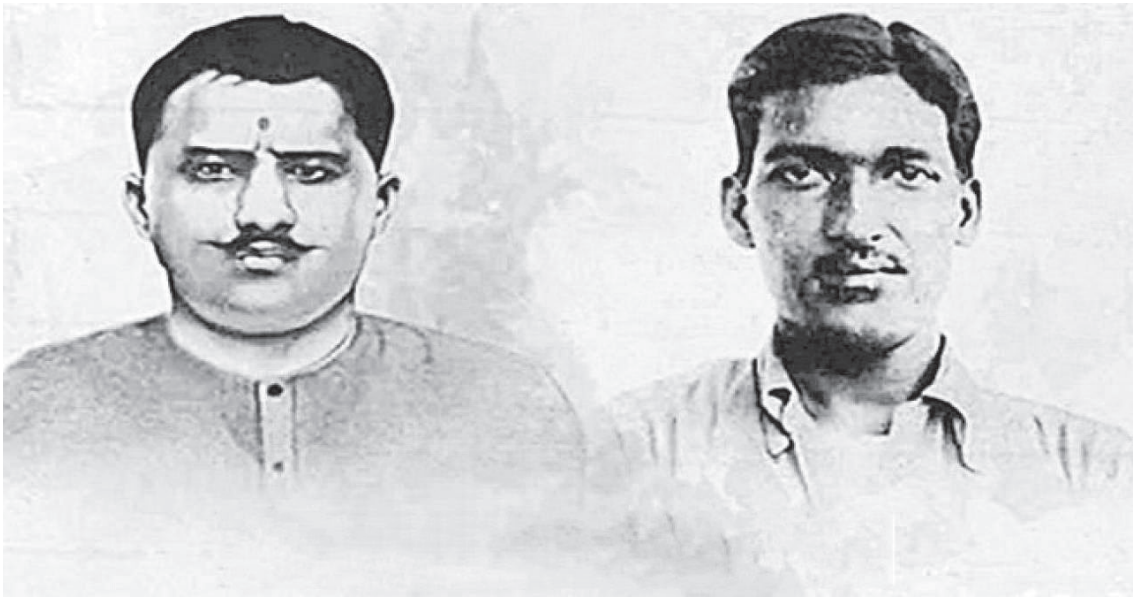

रहे। तुम एक सच्चे मुसलमान तथा सच्चे स्वदेश-भक्त थे। तुम्हें यदि जीवन में कोई विचार था, तो यही कि मुसलमानों को खुदा अक्ल देता, कि वे हिंदुओं के साथ मिल करके हिंदोस्तान की भलाई करते। जब मैं हिंदी में कोई लेख या पुस्तक लिखता तो तुम सदैव यही अनुरोध करते कि उर्दू में क्यों नहीं लिखते, जो मुसलमान भी पढ़ सकें? तुमने स्वदेशभक्ति के भावों को भलीभाँति समझने के लिए ही हिंदी का अच्छा अध्ययन किया। अपने घर पर जब माता जी तथा भ्राता जी से बातचीत करते थे, तो तुम्हारे मुँह से हिंदी शब्द निकल जाते थे, जिससे सबको बड़ा आश्चर्य होता था।

तुम्हारी इस प्रकार की प्रवृत्ति देखकर बहुतों को संदेह होता था, कहीं इस्लाम-धर्म त्याग कर शुद्धि न करा लो। पर तुम्हारा हृदय तो किसी प्रकार अशुद्ध न था, फिर तुम शुद्धि किस वस्तु की कराते? तुम्हारी इस प्रकार की प्रगति ने मेरे हृदय पर पूर्ण विजय पा ली। बहुधा मित्र मंडली में बात छिड़ती कि कहीं मुसलमान पर विश्वास करके धोखा न खाना। तुम्हारी जीत हुई, मुझमें तुममें कोई भेद न था। बहुधा मैंने-तुमने एक थाली में भोजन किए। मेरे हृदय से यह विचार ही जाता रहा कि हिंदू-मुसलमान में कोई भेद है। तुम मुझ पर अटल विश्वास तथा अगाध प्रीति रखते थे। हां! तुम मेरा नाम लेकर नहीं पुकार सकते थे। तुम तो मुझे सदैव 'राम' कहा करते थे। एक समय जब तुम्हें हृदय-कम्प (Palpitation of heart) का दौरा हुआ, तुम अचेत थे, तुम्हारे मुँह से बारंबार 'राम' 'हाय राम' शब्द निकल रहे थे। पास खड़े हुए भाई बांधवों को आश्चर्य था कि 'राम' 'राम' कहता है। कहते कि 'अल्लाह' 'अल्लाह' कहो, पर तुम्हारी 'राम' 'राम' की रट थी! उसी समय किसी मित्र का आगमन हुआ, जो 'राम' के भेद को जानते थे। तुरत मैं बुलाया गया। मुझसे मिलने पर तुम्हें शांति हुई, तब सब लोग 'राम! राम!' के भेद को समझे!

"अंत में इस प्रेम प्रीति तथा मित्रता का परिणाम क्या हुआ? मेरे विचारों के रंग में तुम भी रंग गए। तुम भी एक कट्टर क्रांतिकारी बन गए। अब तो तुम्हारा दिन-रात प्रयत्न यही था, कि जिस प्रकार हो मुसलमान नवयुवकों में भी क्रांतिकारी भावों का प्रवेश हो। वे भी क्रांतिकारी आंदोलन में योग दें। जितने तुम्हारे बंधु तथा मित्र थे, सब पर तुमने अपने विचारों का प्रभाव डालने का प्रयत्न किया। वहुधा क्रांतिकारी सदस्यों को भी बड़ा आश्चर्य होता कि मैंने कैसे एक मुसलमान को क्रांतिकारी दल

मुझे यदि शांति है तो यही कि तुमने संसार में मेरा मुख उज्ज्वल कर दिया। भारत के इतिहास में यह घटना भी उल्लेखनीय हो गई कि अशफाक उल्ला ने क्रांतिकारी आंदोलन में योग दिया। अपने भाई बंधु तथा संबंधियों के समझाने पर कुछ भी ध्यान न दिया। गिरफ्तार हो जाने पर भी अपने विचारों में दृढ़ रहे! जैसे तुम शारीरिक बलशाली थे, वैसे ही मानसिक वीर तथा आत्मा से उच्च सिद्ध हुए। इन सबके परिणामस्वरूप अदालत में तुमको मेरा सहकारी ठहराया गया, और जज ने मुकदमे का फैसला लिखते समय तुम्हारे गले में जयमाल पहना दी

का प्रतिष्ठित सदस्य बना लिया। मेरे साथ तुमने जो कार्य किए, वे सराहनीय हैं। तुमने कभी भी मेरी आज्ञा की अवहेलना न की। एक आज्ञाकारी भक्त के समान मेरी आज्ञा पालन में तत्पर रहते थे। तुम्हारा हृदय बड़ा विशाल था। तुम्हारे भाव बड़े उच्च थे।

मुझे यदि शांति है तो यही कि तुमने संसार में मेरा मुख उज्ज्वल कर दिया। भारत के इतिहास में यह घटना भी उल्लेखनीय हो गई कि अशफाक उल्ला ने क्रांतिकारी आंदोलन में योग दिया। अपने भाई बंधु तथा संबंधियों के समझाने पर कुछ भी ध्यान न दिया। गिरफ्तार हो जाने पर भी अपने विचारों में दृढ़ रहे! जैसे तुम शारीरिक बलशाली थे, वैसे ही मानसिक वीर तथा आत्मा से उच्च सिद्ध हुए। इन सबके परिणामस्वरूप अदालत में तुमको मेरा सहकारी (लेफ्टीनेंट) ठहराया गया, और जज ने मुकदमे का फैसला लिखते समय तुम्हारे गले में जयमाल (फाँसी की रस्सी) पहना दी। प्यारे भाई, तुम्हें यह समझ कर संतोष होगा कि जिसने अपने माता-पिता की धन-संपत्ति को देश सेवा में अर्पण करके अपना अंतिम बलिदान भी दे दिया, उसने अपने प्रिय सखा अशफाक को भी उसी मातृभूमि की भेट चढ़ा दिया।

'असर' हरीम इश्क में हस्ती ही जुर्म है।
रखना कभी न पाँव यहाँ सर लिए हुए।।

रामप्रसाद बिस्मिल रचनावली, (ग्रंथ एवं रचनाएँ) पृ. सं. 101-103

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

'मंथन' की सदस्यता लें

एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान से प्रकाशित शोध त्रैमासिक पत्रिका 'मंथन' की सदस्यता लें। भारत–विचार–दर्शन पर केंद्रित इस पत्रिका की सदस्यता के लिए व्यक्ति/संस्थान कृपया निम्न पते पर सूचित करें और शुल्क एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के नाम से स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, एकाउंट नं. 10080533188, आईएफएससी–एसबीआईएन0006199 में जमा करें।

सदस्यता विवरण

नामः .....

पताः .....

..... राज्यः ..... पिनकोड : .....

लैंड लाइनः ..... मोबाइलः (1)..... (2).....

ई मेलः .....

जन–मार्च 2019 से पुनर्निधारित मूल्य

	भारत में	विदेश में
एक प्रति	₹ 200	US$ 9
वार्षिक	₹ 800	US$ 36
त्रिवार्षिक	₹ 2000	US$ 100
आजीवन	₹ 25,000	

प्रंबध संपादक

'मंथन' त्रैमासिक पत्रिका

एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002

दूरभाष : +91-9868550000, 011-23210074

ई–मेल: info@manthandigital.com

प्रभात

नवनूतन प्रकाशन की गौरवशाली परंपरा

दीनदयाल उपाध्याय

संपूर्ण वाङ्मय (पंद्रह खंडों का सैट)

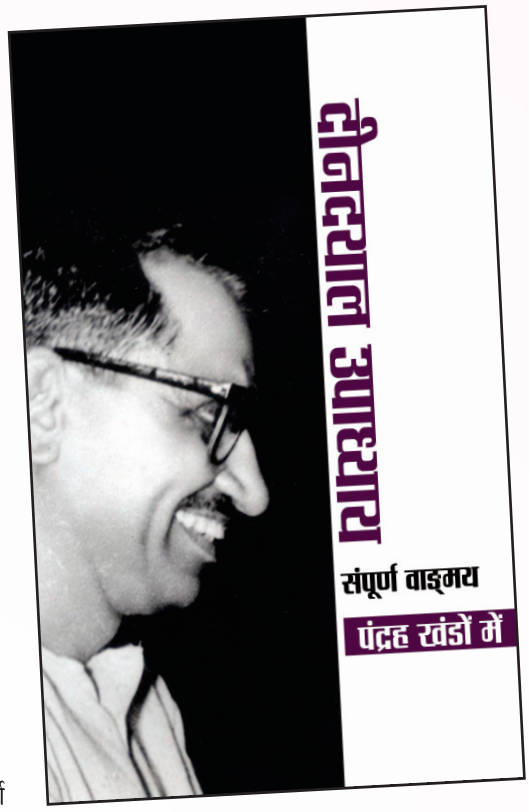

संपादक मंडल

• प्रो. देवेंद्र स्वरूप • श्री रामबहादुर राय • श्री अच्युतानंद मिश्र • श्री जवाहरलाल कौल
• श्री नंदकिशोर त्रिखा • श्री के.एन. गोविंदाचार्य • श्री ब्रजकिशोर शर्मा • डॉ. विनय सहस्रबुद्धे
• श्री अशोक टंडन • डॉ. सीतेश आलोक • श्री आलोक कुमार • श्री बलबीर पुंज
• डॉ. चमनलाल गुप्त • डॉ. भारत दहिया • श्री बनवारी • श्री हितेश शंकर • श्री प्रफुल्ल केतकर
• डॉ. रामप्रकाश शर्मा 'सरस' • श्री अतुल जैन • डॉ. राजीव रंजन गिरि • डॉ. वेद मित्र शुक्ल
• श्री राहुल देव • श्री उमेश उपाध्याय • श्री जगदीश उपासने • श्री सुशील पंडित
• श्री ज्ञानेंद्र बरतरिया • श्री भरत पंड्या • श्री मुज़फ़्फ़र हुसैन • श्री प्रभात कुमार • श्री स्वदेश शर्मा

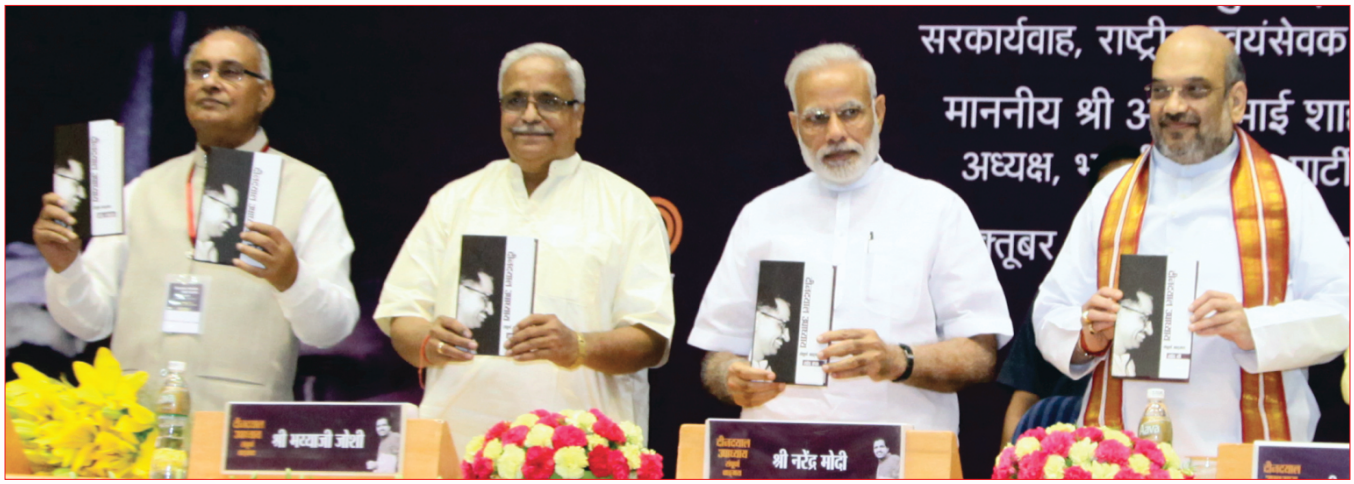

9 अक्तूबर, 2016 को नई दिल्ली के विज्ञान भवन में पं. दीनदयाल उपाध्याय जन्म शताब्दी वर्ष के अवसर पर डॉ. महेश चंद्र शर्मा द्वारा संपादित एवं प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय' के पंद्रह खंडों का लोकार्पण भारत के प्रधानमंत्री मान. श्री नरेंद्र मोदी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह मान. श्री सुरेश (भय्याजी) जोशी व भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष मान. श्री अमित शाह के करकमलों द्वारा संपन्न हुआ।

''यह पंडितजी की जीवन-यात्रा, विचार-यात्रा और संकल्प-यात्रा की त्रिवेणी है। यह दिन इस त्रिवेणी का प्रसाद लेने का दिन है। पं. दीनदयाल उपाध्यायजी कहा करते थे कि अपने सुरक्षाबलों को मजबूत किए बिना कोई राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता को अक्षुण्ण नहीं रख सकता, इसलिए सुरक्षा-तंत्र मजबूत होना ही चाहिए। पंडितजी द्वारा कही गई बातें आज भी इतनी ही प्रासंगिक हैं।''

–श्री नरेंद्र मोदी, प्रधानमंत्री, भारत

''विचारों का छोटा सा बीज पं. दीनदयालजी ने बोया था, आज वह वटवृक्ष के रूप में खड़ा होकर न केवल भारत बल्कि पूरे विश्व की समस्याओं को सुलझाने की दिशा में अग्रसर है। उनका साहित्य उनकी सरलता, दूरदर्शिता और संकल्पशक्ति का परिचय कराएगा।''

–श्री अमित शाह, राष्ट्रीय अध्यक्ष, भाजपा

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001:2008 प्रकाशक
4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002
हेल्पलाइन नं. 7827007777 ☎ 011-23257555
E-mail : prabhatbooks@gmail.com ✤ Website : www.prabhatbooks.com

एकात्म मानवदर्शन
अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान
एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002
☎ 011-23210074
इ-मेल : ekatmrdfih@gmail.com

Regd. R.No. 32486/78 (Hindi)

भारतीय संविधान पर महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

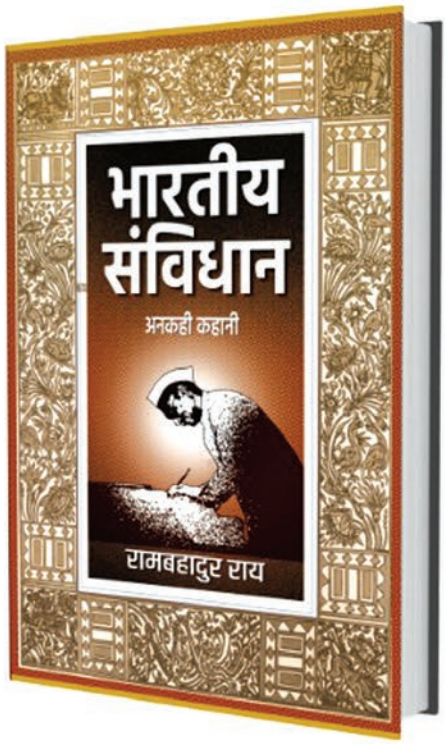

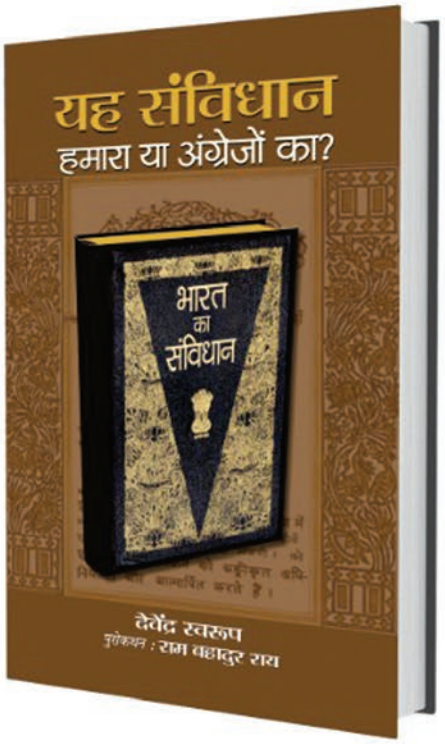

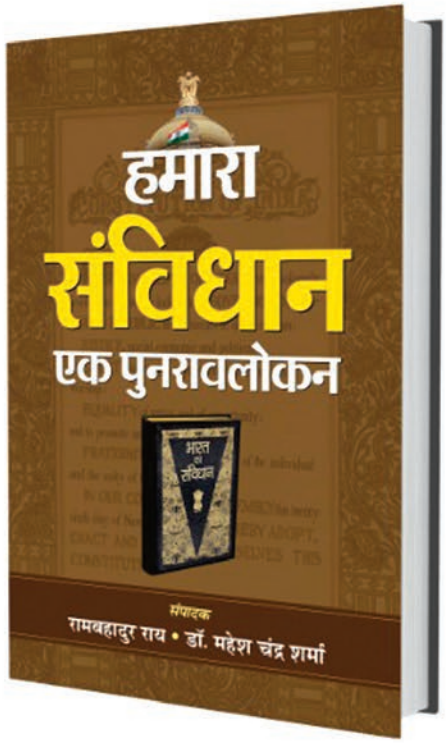

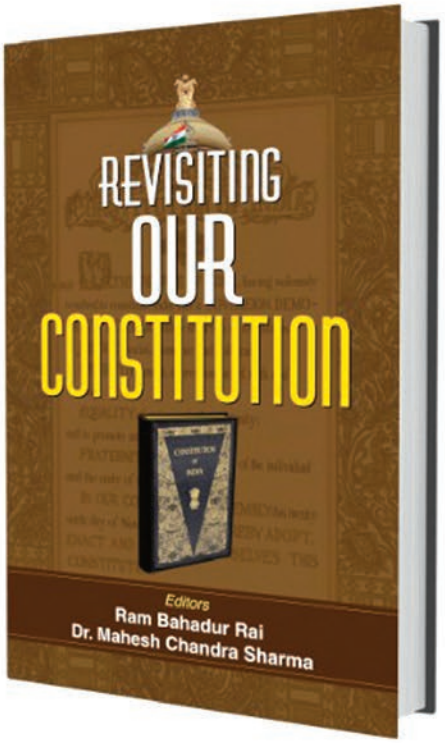

7000 से अधिक पुस्तकों का विस्तृत सूची-पत्र निशुल्क पाने के लिए लिखें—

पोस्टेज फ्री

हेल्पलाइन नं. 7827007777

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001 : 2015 प्रकाशक

4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002
☎ 011-23289777

E-mail : prabhatbooks@gmail.com ✣ Website : www.prabhatbooks.com ✣ www.facebook.com/prabhatprakashan